जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग-2)

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन-खैरागढ़

एवं

श्री कहान स्मृति प्रकाशन - सोनगढ़

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का दूसरा पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग – २)

लेखक :

ब्र. हरिभाई सोनगढ़

अनुवादक :

सौ. स्वर्णलता जैन एम.ए., नागपुर

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़ – ४९१ ८८१ (मध्यप्रदेश)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

सन्त सान्निध्य, सोनगढ़ – ३६४२५० (सौराष्ट्र)

प्रथम चार आवृत्ति - 20,000 प्रतियाँ
पंचम आवृत्ति - 5,000 प्रतियाँ
(मंगलायतन, अलीगढ़ में आयोजित प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर)
दिनांक 31जनवरी से 6 फरवरी, 2003

न्यौछावर – सात रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान –

- **अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन,**
  शाखा – खैरागढ़
  श्री खेमराज प्रेमचंद जैन, 'कहान-निकेतन'
  खैरागढ़ – 491881, जि. राजनाँदगाँव (म.प्र.)

- **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
  ए-4, बापूनगर, जयपुर – 302015

- **ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन**
  'कहान रश्मि', सोनगढ़ - 364250
  जि. भावनगर (सौराष्ट्र)

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण व्यवस्था –

जैन कम्प्यूटर्स,
श्री टोडरमल स्मारक भवन, मंगलधाम,
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन : 0141-2700751
फैक्स : 0141-2709865

卐 अनुक्रमणिका 卐

दूसरे सिंह की कहानी	11
दो ज्ञानियों की चर्चा	14
सगर चक्रवर्ती और...	15
वज्रबाहु का वैराग्य	24
सुकौशल का वैराग्य	33
वाघिन का वैराग्य	39
एक था हाथी	41
भरत और हाथी	46
दूसरे हाथी की आत्मकथा	49
बोले....तो क्या बोले ?	57
अहिंसा धर्म की कहानी	59
वनवासी अंजना	65
आत्मज्ञानी वीर हनुमान	70
हनुमान को परमात्मा के...	73
देशभूषण-कुलभूषण	78

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन 26 दिसम्बर, 1980 को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् 1988 में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य 21001/- में, संरक्षक शिरोमणि सदस्य 11001/- में तथा परमसंरक्षक सदस्य 5001/- में भी बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. 2506 में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा।

तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12,13,14 एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट – इसप्रकार इक्कीस पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं।

दूसरे पुष्प का यह पंचम संस्करण प्रकाशित कर हम इस बात पर अत्यन्त गौरव अनुभव कर रहे हैं कि इन कहानियों के माध्यम से बाल-युवा-वृद्ध सभी भरपूर लाभ ले रहे हैं। इस भाग में पुराण पुरुषों के भव-भवान्तरों के आधार पर तत्त्वज्ञान से आपूरित, वैराग्य एवं ज्ञानबर्द्धक 15 कहानियाँ दी जा रही हैं। जिनका सम्पादन पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम आपके आभारी हैं।

आशा है पुराण पुरुषों की कथाओं से पाठकगण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे।

जैन बाल साहित्य अधिक से अधिक संख्या में प्रकाशित हो – ऐसी भावी योजना है। इसी के अर्न्तगत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15 शीघ्र आ रहा है। तथा अब शीघ्र ही "**जैन कामिक्स**" के प्रकाशन की योजना आरम्भ कर रहा है।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन	प्रेमचन्द जैन
अध्यक्ष	**साहित्य प्रकाशन प्रमुख**

आवश्यक सूचना

पुस्तक प्राप्ति अथवा सहयोग हेतु राशि ड्राफ्ट द्वारा
"**अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़**" के नाम से भेजें।
हमारा बैंक खाता स्टेट बैंक आफ इण्डिया की खैरागढ़ शाखा में है।

सिंह का वैराग्य

- कवि प्रेमचन्द जैन 'वत्सल'

एक सिंह की सुनो कहानी जंगल में वह मस्ती से।
मार-मार कर खाता निश-दिन जीव वहाँ की बस्ती से॥
क्रूर जानवर क्रूर हृदय से क्रूर कर्म में निपुण महान।
जिसके नख ही करते रहते हर-क्षण तलवारों का काम॥
एक दो नहीं पाँच दस नहीं होते चार पैर के बीस।
पकड़े और खाय जीवित ही अलग करे नहिं धड़ से सीस॥
एक समय वह हिरण पकड़ कर खाय रहा था हो निर्भय।
अकस्मात् इक घटना घटती भव्य सुनो उसका निर्णय॥
चारण ऋद्धीधारी मुनिवर जो दोय गगन से उतर रहे।
वे इसको देख नजर इसकी में अपनी नजर मिलाय रहे॥
अब तो वह सिंह सोचता उस क्षण मानों मुझ से बोल रहे।
होता भी ऐसा है सचमुच मुनिवर उसको सम्बोध रहे॥
अय सिंहराज ! क्या सोच रहे हो ये नहिं काम तुम्हारा है।
जिनशासन नायक पद पाने का आया समय तुम्हारा है॥
निज शक्ति का कुछ पता नहीं यातें कुकृत्य अपनाय लिया।
अब भी तू चेत अरे चेतन ! तू सिंह नहीं सुन खोल हिया॥
तब उसने अगले पैर जोड़कर करी वन्दना उसी समय।
अन्दर से फिर वैराग्य जगा मानों कुकृत्य से खाया भय॥
आँखों में आँसू भरकर के स्वीकृत अपना अपराध किया।
अरु पड़ा शान्त चरणों में मानों वह अब माफी माँग रहा॥
कोई उपाय नहिं जीने का ऐसी पर्याय लई मैंने।
अब खाकर माँस रहूँ जीवित फिर क्या कुकृत्य छोड़ा मैंने॥
तातैं भोजन-पानी तजकर लीनी समाधि निज आतम-हित।
तब मरा जान वन जीव सभी निर्भय हो देख रहे दे चित॥
वह भी समाधि से नहीं डिगा निज-आराधन में अडिग हुआ।
तब देह-त्याग सौधर्म स्वर्ग में हरिध्वज नामा देव हुआ॥
दशवें भव में वे महावीर तीर्थंकर भी बन जाते हैं।
पशु से परमातम बने, 'प्रेम' विधि जैनधर्म में पाते हैं॥

दूसरे सिंह की कहानी

(जो ऋषभदेव का पुत्र होकर मोक्ष गया)
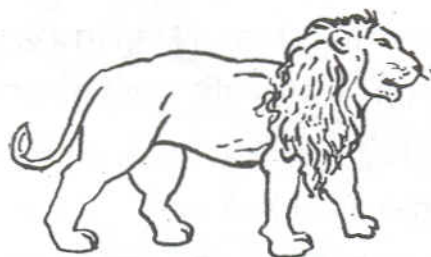
(जैनधर्म की कहानियों के प्रथम भाग में भी आपने एक सिंह की आत्म-कथा पढ़ी थी, वह सिंह भगवान महावीर का जीव था। यहाँ दूसरे सिंह की बात है, यह जीव भरत चक्रवर्ती का जीव है। जब यह सिंह योनि में था, तब उसके ऊपर मुनिराज को भी वात्सल्य भाव आया था।

वाह, सम्यग्दृष्टि धर्मात्माओं के प्रति मुनियों को भी वात्सल्य भाव आता है। भरत चक्रवर्ती का जीव पूर्वभव में सिंह था, उससमय मुनिराज का आहार-दान देखकर वह बहुत आनंदित हुआ और उसीसमय जातिस्मरण ज्ञान हुआ, उसके बाद उसने वैराग्य प्राप्त कर संन्यास धारण किया, उसी समय मुनिराज ने एक राजा से उसकी सेवा करने के लिए कहा था। उसकी कहानी पुराणों में आती है। वह कहानी इसप्रकार है –)

भगवान ऋषभदेव का जीव पूर्व में वज्रजंघ राजा था, उस भव में उसने मुनियों को आहार-दान दिया था, तब अति विनम्रभाव से उसने मुनियों से पूछा– ''हे नाथ ! यह मतिवर मंत्री वगैरह मुझे मेरे भाई के समान प्रिय लगते हैं। इसलिए आप कृपा करके उनके पूर्वभव का वृत्तान्त बताइये।''

तब मुनिराज ने कहा– ''हे राजन् ! सुनो, यह मतिवर मंत्री का जीव पूर्वभव में विदेहक्षेत्र में एक पर्वत के ऊपर सिंह था। एक बार वहाँ

का राजा प्रीतिवर्धन उस पर्वत पर आया और वहाँ पिहितास्रव नाम के मुनि को विधिपूर्वक आहार-दान कराया। सिंह (मतिवर मंत्री के जीव अथवा भरत चक्रवर्ती के जीव) को यह देखकर जातिस्मरण ज्ञान हुआ, उससे वह सिंह अतिशय शान्त हो गया, फिर मुनिराज के उपदेश से उसने व्रत धारण करके संन्यास-मरण (समाधि-मरण) अंगीकार किया।''

जब मुनिराज पिहितास्रव ने उस सिंह के समाधि-मरण की सारी बात जान ली, तब राजा प्रीतिवर्धन से कहा– ''हे राजन्! इस पर्वत पर एक सिंह श्रावक व्रत धारण करके समाधि-मरण कर रहा है, वह निकट मोक्षगामी है, इसलिए तुम्हें उसकी सेवा करना योग्य है। वह सिंह का जीव अल्प भव में भरत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर का पुत्र भरत चक्रवर्ती होकर उस ही भव में मोक्ष प्राप्त करेगा।''

मुनिराज के वचन सुनकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने मुनिराज के साथ जाकर उस वैरागी सिंह को देखा। फिर राजा ने उसकी सेवा तथा समाधि में यथायोग्य सहायता की। ''यह सिंह का जीव देव होकर, मोक्ष को जावेगा''– ऐसा समझकर मुनिराज ने भी उसके कान में णमोकार मंत्र सुनाया।

"१८ दिन तक आहार का त्याग करके पंचपरमेष्ठी के चिन्तन पूर्वक देह छोड़कर वह सिंह दूसरे स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से आयु पूर्ण कर यह तुम्हारा (व्रजजंघ राजा का) मंत्री मतिवर हुआ है।

हे राजा ! अब आठवें भव में तुम जिस समय ऋषभदेव तीर्थंकर होगे, उसीसमय यह मतिवर मंत्री का जीव तुम्हारा पुत्र (भरत चक्रवर्ती) होकर उसी भव से ही मोक्ष प्राप्त करेगा।" –इसप्रकार मुनिराज ने राजा वज्रजंघ को मतिवर मंत्री के जीव का वृतांत बताया।

मतिवर मंत्री अपने भूत और भविष्य के भव की उत्तम चर्चा मुनिराज के श्रीमुख से सुनकर बहुत आनन्दित हुआ।

परमात्मा के प्रतीक : अष्टद्रव्य

जल से निर्मल नाथ ! चन्दन से शीतल प्रभो !
अक्षत से अविनाश, पुष्प सदृश कोमल विभो !
रत्नदीप सम ज्ञान, षट्रस व्यंजन से सुखद।
सुरभित धूप समान, सरस सु-फल सम सिद्ध पद॥

दो ज्ञानियों की चर्चा

एक था सिंह और एक था हाथी। एक बार उन दोनों की भेंट हुई। वे दोनों आत्मा को जाननेवाले थे और आनंद से बात करते थे –

सिंह ने पूछा– हे गजराज ! तुम्हे आत्मज्ञान कहाँ हुआ?

हाथी ने कहा– हे वनराज ! सम्मेदशिखर की ओर एक संघ जा रहा था, उसके साथ रहनेवाले जैन मुनिराज श्री अरविंद के उपदेश से हमें आत्मज्ञान हुआ।

फिर हाथी ने पूछा– हे वनराज ! तुम्हें आत्मज्ञान कहाँ हुआ ?

सिंह ने कहा – आकाशमार्ग से दो मुनिराज आये थे, उनके उपदेश से मुझे आत्मज्ञान हुआ।

तब सिंह ने पूछा – हे हाथी भाई ! तुम भविष्य में क्या होगे?

हाथी ने कहा– मैं पारसनाथ-तीर्थंकर होकर मोक्ष जाऊँगा।

फिर हाथी ने पूछा– हे सिंह भाई ! तुम भविष्य में क्या होगे ?

सिंह ने कहा– मैं महावीर-तीर्थंकर होकर मोक्ष जाऊँगा।

वाह, एक-दूसरे की यह सरस बात सुनकर वे दोनों भावी तीर्थंकर खुश हुए और इन दोनों की बात सुनकर हम सब भी.......खुश हुए।•

सगर चक्रवर्ती और साठ हजार राजकुमारों का वैराग्य

(जीव को धर्म में मदद करे, वही सच्चा मित्र)

इस भरत क्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव हुए, उनके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत हुए। बाद में दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ हुए, उनके शासनकाल में सगर नाम के दूसरे चक्रवर्ती हुए।

सगर चक्रवर्ती पूर्वभव में विदेह क्षेत्र में जयसेन नाम के राजा थे, उन्हें अपने दो पुत्रों से बहुत स्नेह था, उनमें से एक पुत्र के मरण होने पर वे मूर्छित हो गये, पश्चात् शरीर को दुःख का ही धाम समझ कर जन्म-मरण से छूटने के लिए दीक्षा लेकर मुनि हुए। तब उनके साले महारूप ने भी उनके साथ दीक्षा ले ली, दूसरे हजारों राजा भी दीक्षा लेकर मुनि हुए और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्ध मोक्षमार्ग को साधने लगे।

जयसेन और महारूप– ये दोनों मुनिराज समाधि-मरणपूर्वक देह छोड़कर सोलहवें अच्युत स्वर्ग में देव हुए। वे दोनों एक दूसरे के मित्र थे और ज्ञान-वैराग्य की चर्चा करते थे। एक बार उन्होंने प्रतिज्ञा ली कि हम में से जो भी पहले पृथ्वी पर अवतार लेकर मनुष्य होगा, उसे दूसरा देव प्रतिबोध देगा अर्थात् उसे संसार के स्वरूप को समझाकर वैराग्य उत्पन्न कराकर और दीक्षा लेने की प्रेरणा करेगा। इसप्रकार धर्म में मदद करने के लिए दोनों मित्रों ने एक-दूसरे के साथ प्रतिज्ञा की। सच ही है सच्चा मित्र वही है, जो धर्म में मदद करे।

अब उनमें से प्रथम जयसेन राजा के जीव ने बाईस सागरोपम तक देवलोक के सुख भोग कर आयु पूर्ण होने पर मनुष्य लोक में अवतार लिया। भरत क्षेत्र में ही जहाँ पहले दो तीर्थंकर और भरत चक्रवर्ती ने अवतार लिया था, उसी अयोध्या नगरी में उन्होंने अवतार लिया। उनका नाम था सगरकुमार। वे दूसरे चक्रवर्ती हुए और छह खण्ड पर राज्य करने

लगे। उन चक्रवर्ती के अत्यंत पुण्यवान साठ हजार पुत्र थे, वे सभी उत्तम धर्मसंस्कारी थे।

एक बार किसी मुनिराज को केवलज्ञान हुआ और बहुत उत्सव मनाया गया, कितने ही देव उत्सव में आये। उनमें मणिकेतु नाम का देव जो सगर चक्रवर्ती का मित्र था वह भी आया। केवली भगवान की वाणी सुनकर उसे यह जानने की इच्छा हुई कि मेरा मित्र कहाँ है ? इच्छा होते ही उसने अपने अवधिज्ञान से जान लिया कि वह जीव पुण्योदय से अयोध्या नगरी में सगर नाम का चक्रवर्ती हुआ है।

अब उस देव को पूर्व की प्रतिज्ञा याद आयी और अपने मित्र को प्रतिबोध देने के लिए वह अयोध्या आया। वहाँ आकर सगर चक्रवर्ती से कहा–

''हे मित्र ! तुझे याद है ? हम दोनों स्वर्ग में एक साथ थे और हम दोनों ने साथ में निश्चित किया था कि अपने में से जो पृथ्वी पर पहले अवतार लेगा, उसे स्वर्ग में रहनेवाला दूसरा साथी प्रतिबोध देगा। हे भव्य ! तुमने इस पृथ्वी पर पहले अवतार लिया है, परन्तु तुम मनुष्यों में उत्तमोत्तम ऐसा चक्रवर्ती पद प्राप्त कर बहुत काल तक भोगों में ही भूले हो। अरे, सर्प के फण समान दुःखकर इन भोगों से आत्मा को क्या लाभ है ? इसमें किंचित् सुख नहीं, इसलिए हे राजन् ! हे मित्र ! अब इन भोगों को छोड़कर मोक्षसुख के लिए उद्यम करो। अरे, अच्युत स्वर्ग के दैवी वैभव असंख्य वर्षों तक भोगने पर भी तुम्हें तृप्ति नहीं हुई। यह राज्य वैभव तो उसके सामने कुछ भी नहीं है। इसलिए इनका मोह छोड़कर अब मोक्षमार्ग में लगो।

अपने मित्र मणिकेतु देव के ऐसे हितपूर्ण वचनों को सुनकर भी उस सगर चक्रवर्ती ने लक्ष्य में नहीं लिया। वह विषयों में आसक्त और वैराग्य से विमुख ही रहा।

मित्र की ऐसी दशा देखकर, ''इसको अभी भी मुक्ति का मार्ग दूर है'' –ऐसा विचार कर वह देव अपने स्थान पर चला गया, सच ही है कि ज्ञानी पुरुष दूसरे के अहित की तो बात ही नहीं करता, परन्तु हित की बात भी योग्य समय विचार कर ही करता है। अरे, धिक्कार है ऐसे संसार को कि जिसकी लालसा मनुष्य को अपने वचनों से च्युत कर देती है। सगर चक्रवर्ती तो ज्ञानी थे, फिर भी वे भोग आसक्ति के कारण चारित्र दशा लेने के लिए तैयार नहीं हुए।

बहुत समय बाद, वह मणिकेतु देव फिर से इस पृथ्वी पर आया, अपने मित्र को संसार से वैराग्य कराकर मुनिदशा अंगीकार करवाने के लिए। इससमय उसने दूसरा उपाय विचार किया। उसने चारण ऋद्धिधारी छोटे कद के मुनि का रूप धारण किया। वे तेजस्वी मुनिराज अयोध्या नगरी में आये और सगर चक्रवर्ती के चैत्यालय में जिनेन्द्र भगवान को वंदन कर स्वाध्याय करने बैठ गये। इसी समय सगर चक्रवर्ती भी चैत्यालय में आये और उसने मुनिराज को देखा, मुनि को देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ और भक्ति से नमस्कार करके पूछा–

''प्रभो ! आपका तो अद्भुत रूप है, आपने इतनी छोटी उम्र में ही मुनिपद कैसे ले लिया ?

उससमय अत्यंत वैराग्य से उन चारण ऋद्धिधारी मुनिराज ने कहा– ''हे राजन् ! देह का रूप तो पुद्गल की रचना है और इस जवानी का कोई भरोसा नहीं, जवानी के बाद बुढ़ापा आयेगा ही, इसका मुझे विश्वास नहीं। आयु तो प्रतिदिन घटती जाती है। शरीर तो मल का धाम है, विषयों के पाप से भरा हुआ है, उसमें दुःख ही है– यह अपवित्र अनित्य और पापमय संसार का मोह क्यों ? यह छोड़ने योग्य ही है।

वृद्धावस्था की राह देखते हुए धर्म में आलस करके बैठे रहना तो मूर्खता है। प्रिय वस्तु का वियोग और अप्रिय वस्तु का संयोग संसार में

होता ही है। संसार में कर्मरूपी शत्रु द्वारा जीव की ऐसी दशा होती है, इसलिए आत्मध्यानरूपी अग्नि के द्वारा उस कर्म को भस्म करके अपने अविनाशी मोक्षपद को प्रकट करो। हे राजन् ! तुम भी इस संसार के मोह को छोड़कर मोक्ष साधने के लिए उद्यम करो।"

मुनिवेश में स्थित अपने मित्र मणिकेतु देव की वैराग्यभरी बात सुनकर सगर-चक्रवर्ती संसार से भयभीत तो हुआ, परंतु ६० हजार पुत्रों के तीव्र स्नेह से वह मुनिदशा नहीं ले सका। अरे, स्नेह का बंधन कितना मजबूत है। राजा के इस मोह को देखकर मणिकेतु को खेद हुआ और "अब भी इसका मोह बाकी है" –ऐसा विचार कर वह पुन: चलां गया।

अरे, देखो तो जरा ! इस साम्राज्य की तुच्छ लक्ष्मी के वश चक्रवर्ती पूर्वभव के अच्युत स्वर्ग की लक्ष्मी को भी भूल गया है। उस स्वर्ग की विभूति के सामने इस राज्य-संपदा का क्या मूल्य है कि जिसके मोह में जीव फँसा है; परन्तु मोही जीव को अच्छे-बुरे का विवेक नहीं रहता। यह चक्रवर्ती तो आत्मज्ञानी होने पर भी पुत्रों में मोहित हुआ है, पुत्रों के प्रेम में वह ऐसा मोहित हो रहा है कि मोक्ष के उद्यम में भी प्रमादी हो गया है।

उस चक्रवर्ती के सिंह के बच्चों समान शूरवीर और प्रतापवंत राजपुत्र एक बार राजसभा में आये और विनयपूर्वक कहने लगे– "हे पिताजी ! जवानी में शोभे– ऐसा कोई साहस का काम हमें बताइये–

उस समय चक्रवर्ती ने प्रसन्न होकर कहा– "हे पुत्रो ! चक्र के द्वारा अपने सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। हिमवन पर्वत और लवण समुद्र के बीच (छह खण्ड में) ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसे हम प्राप्त न कर सकें। इसलिए तुम्हारे लिये तो अब एक ही काम शेष है कि तुम इस राज्यलक्ष्मी का यथायोग्य भोग करो।"

शुद्ध भावनावाले उन राजपुत्रों ने पुन: आग्रह किया–

"हे पिताजी ! हमको धर्म की सेवा का कोई कार्य सौंपें, यदि आपने कोई कार्य नहीं सौंपा तो हम भोजन नहीं करेंगे। सभी राजपुत्र धर्मात्मा थे।" (उनके इस मांगलिक आदर्श को देखकर युवावर्ग को धर्मकार्य में उत्साह से भाग लेना चाहिए।)

उत्साही पुत्रों के आग्रह को देखकर राजा को चिंता हुई कि उन्हें क्या काम सौंपना चाहिये? विचार करते ही उन्हें याद आया कि हाँ, मेरे से पहले हुए भरत चक्रवर्ती ने कैलाशपर्वत पर अतिसुंदर प्रतिमायें स्थापित की हैं। उसकी रक्षा के लिए चारों ओर खाई खोद कर उसमें गंगा नदी का पानी प्रवाहित किया जाय तो उससे मंदिरों की रक्षा होगी– ऐसा विचार कर राजा ने पुत्रों को वह कार्य सौंपा।

पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके वे राजपुत्र उस काम को करने के लिए कैलाशपर्वत पर गये। वहाँ जाकर उन्होंने अत्यंत भक्तिपूर्वक जिनबिम्बों के दर्शन किये, पूजा की।

"अहा ! ऐसे अद्‌भुत रत्नमय जिनबिम्ब हमने कहीं नहीं देखे। हमें ऐसे भगवान के दर्शन हुए और महाभाग्य से जिनमंदिरों की सेवा करने का अवसर मिला"– इस तरह परम आनंदित होकर वे ६० हजार राजपुत्र भक्तिपूर्वक अपने सौंपे हुए कार्य को करने लगे।

यहाँ चक्रवर्ती का मित्र मणिकेतु देव फिर से राजा को समझाने के लिये आया। इस समय उसने नया उपाय सोचा।

"उसने एक मोटे जहरीले साँप का रूप बनाया और कैलाशपर्वत पर जाकर उन सभी राजकुमारों को उसने डस कर बेहोश कर दिया, जिससे कोई समझे कि वे मर गये हैं– ऐसा दिखावा किया।

"कितने ही वचन हितरूप होने के साथ मधुर हो जाते हैं और कितने ही वचन हितरूप होने पर भी कटु हो जाते हैं, उसीप्रकार अहित वचनों में भी कितने मधुर और कितने ही कटु हो जाते है। वे दोनों प्रकार के अहित वचन तो छोड़ने योग्य ही हैं।"

एक साथ ६० हजार राजकुमारों के मरण को देखकर राजमंत्री भी एकदम घबरा गये– राजमंत्री जानते थे कि महाराजा को पुत्रों से बहुत ही प्रेम है, उनके मरण का समाचार वे सहन नहीं कर सकते। उनमें भी एक साथ ६० हजार पुत्रों का मरण ! यह 'दुःखद समाचार' राजा को सुनाने की हिम्मत किसी की नहीं हुई।

उसीसमय, मणिकेतुदेव एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके सगर चक्रवर्ती के पास आया और अत्यंत शोकपूर्वक कहने लगा–

"हे महाराज ! मेरा इकलौता जवान पुत्र मर गया है, यमराज ने उसका हरण कर लिया है, आप तो समस्त लोक के पालक हो, इसलिए मेरे पुत्र को वापिस लाकर दे दो, उसे जीवित कर दो, यदि तुम मेरे इकलौते पुत्र को जिंदा नहीं करोगे तो मेरा भी मरण हो जावेगा।"

ब्राह्मण की बात सुनकर राजा ने कहा– "अरे ब्राह्मण ! क्या तू यह नहीं जानता कि मृत्यु तो संसार के सभी जीवों को मारती ही है। एकमात्र सिद्ध भगवान ही मरण से रहित हैं, दूसरे सभी जीव मरण से सहित हैं। –इस बात को सभी जानते हैं कि जिसकी आयु समाप्त हो गयी, वह किसी भी प्रकार से जीवित नहीं रह सकता। सभी जीव अपनी-अपनी आयु प्रमाण ही जीते हैं, आयु पूरी होने पर उनका मरण होता ही है, इसलिए मरणरूप यमराज को यदि तुम जीतना चाहते हो तो शीघ्र ही सिद्धपद को साधो। इस जीर्ण-शीर्ण शरीर के या पुत्र के मरण का शोक छोड़कर मोक्ष की प्राप्ति के लिए तत्पर होकर जिनदीक्षा धारण करो। घर में पड़े रहकर बूढ़े होकर मरने के बदले दीक्षा लेकर मोक्ष का साधन करो।"

इसप्रकार सगर चक्रवर्ती ने वैराग्यप्रेरक उपदेश दिया। उससमय उस ब्राह्मण (मणिकेतु देव) ने कहा– "हे महाराज ! जो आप कहते हो वह बात यदि वास्तव में सत्य है तो मेरी भी एक बात सुनो, यदि यमराज

से बलवान कोई नहीं है और मृत्यु से कोई बच नहीं सकता– ऐसा आप कहते हो तो मैं आपको एक गंभीर समाचार सुनाऊँ, उसे सुनकर आप भी भयभीत मत होना, आप भी संसार से वैराग्य लेकर मोक्ष की साधना में तत्पर होना।''

सगर चक्रवर्ती ने आश्चर्य से कहा– ''अरे ब्राह्मण देव ! कहो, ऐसा क्या समाचार है ?''

ब्राह्मण रूपधारी मित्र ने कहा– ''हे राजन् ! सुनो, तुम्हारे ६० हजार पुत्र कैलाशपर्वत पर गये थे, वहाँ वे सब मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं। उनको भयंकर सर्प ने डस लिया है, एक भी नहीं बच सका......एक साथ ६० हजार पुत्रों को मारनेवाले दुष्ट यमराज को जीतने के लिए आपको भी मेरे समान मोह छोड़कर शीघ्र दीक्षा ले लेना चाहिये और मोक्ष का साधन करना चाहिये। इसलिए चलो......हम दोनों एकसाथ दीक्षा ले लेवें।''

ब्राह्मण के वज्रपात जैसे वचन सुनकर ही राजा का हृदय छिन्न-भिन्न हो गया और पुत्रों के मरण के आघात से वे बेहोश हो गये। जिन पर अत्यंत स्नेह था – ऐसे ६० हजार राजकुमारों के एक साथ मरण होने की बात वे सुन न सके, सुनते ही उन्हें मूर्छा आ गयी। लेकिन वह चक्रवर्ती आत्मज्ञानी था......थोड़ी देर बाद बेहोशी समाप्त होने के बाद होश में आते ही उनकी आत्मा जाग उठी, उन्होंने विचार किया–

''अरे! व्यर्थ का खेद किसलिए ? खेद करानेवाली यह राज्यलक्ष्मी या पुत्र-परिवार कुछ भी मेरे नहीं हैं, मेरी तो एक ज्ञानचेतना ही है। अब मुझे पुत्रों का अथवा किसी का भी मोह नहीं है। अरे रे ! अब तक मैं व्यर्थ ही मोह में फँसा रहा। मेरे देव-मित्र (मणिकेतु) ने आकर मुझे समझाया भी था, फिर भी मैं नहीं माना। अब तो पुत्रों का भी मोह छोड़कर मैं जिन-दीक्षा लूँगा और अशरीरी सिद्धपद की साधना करूँगा।

'शरीर अपवित्र है और विषय-भोग क्षणभंगुर है' –ऐसा जानकर ऋषभदेव आदि तीर्थंकर तथा भरत आदि-चक्रवर्ती विषय-भोगों के धाम गृह-परिवार को छोड़कर वन में चले गये और चैतन्य में लीन होकर मोक्ष प्राप्त किया। मैं भी अब उनके बताये मार्ग पर ही चलूँगा। मैं मूर्ख बनकर अब तक विषयों में ही फँसा रहा। अब एक क्षण भी इस संसार में नहीं रहूँगा।''

इसप्रकार सगर चक्रवर्ती वैराग्य की भावना कर ही रहे थे कि वहाँ उनकी नगरी में महाभाग्य से दृढ़वर्मा नामक केवली प्रभु का आगमन हुआ। सगर चक्रवर्ती अत्यंत हर्षोल्लास के साथ उनके दर्शन करने गये और प्रभु के उपदेशामृत ग्रहण करके राजपाट छोड़कर जिनदीक्षा धारण की। चक्रवर्ती पद छोड़कर अब चैतन्य के ध्यानरूपी धर्मचक्र से वे सुशोभित होने लगे उन्हें मुनिदशा में देख कर उनका देवमित्र (मणिकेतु देव) अत्यंत प्रसन्न हुआ।

अपने मित्र को प्रतिबोध करने का कार्य पूरा हुआ जानकर वह देव अपने असली स्वरूप में प्रकट हुआ और सगर मुनिराज को नमस्कार करके कैलाशपर्वत पर गया। वहाँ जाकर उसने राजपुत्रों को सचेत किया और कहा– ''हे राजपुत्रो ! तुम्हारी मृत्यु की बनावटी खबर सुनकर तुम्हारे पिता सगर महाराज संसार से वैराग्यपूर्वक दिगम्बर दीक्षा अंगीकार कर मुनि बन गये हैं, अतः मैं तुम्हें ले जाने के लिए आया हूँ।''

अहा, कैसा अद्भुत प्रसंग !! उन चरम शरीरी ६० हजार राजकुमार पिताश्री की वैराग्योत्पादक बात सुनकर एकदम उदासीन हो गये, अयोध्या के राजमहलों में वापस लौटने के लिए सभी ने मना कर दिया और संसार से विरक्त होकर सभी राजकुमार श्री मुनिराज की शरण में गये, वहाँ धर्मोपदेश सुना और एकसाथ ६० हजार राजपुत्रों ने मुनिदीक्षा धारण कर ली। वाह ! धन्य वे मुनिराज !! धन्य वे वैरागी राजकुमार !!!

मणिकेतुदेव ने अपने वास्तविक स्वरूप में आकर सभी मुनि भगवन्तों को नमस्कार किया। तथा अपने मित्र के हित के लिए यह सब माया करनी पड़ी, इसके लिए क्षमा माँगी। मुनिराजों ने उसे सांत्वना दी और कहा– "अरे! इसमें तुम्हारा क्या अपराध है? किसी भी प्रकार से जो धर्म में सहायता करे, वही परमहितैषी सच्चा मित्र है। तुमने तो हमारा परमहितरूप काम किया है।"

इसप्रकार मणिकेतुदेव का मित्र को मोक्षमार्ग की प्रेरणा देने का कार्य सिद्ध हुआ, साथ ही साथ ६० हजार राजकुमारों ने भी मुनिधर्म अंगीकार किया; अतः वह प्रसन्नचित्त से स्वर्ग में वापस चला गया।

सगर-मुनिराज तथा ६० हजार राजकुमार (मुनिराज) – ये सब आत्मा के ज्ञान-ध्यानपूर्वक विहार करते हुए अन्त में सम्मेदशिखरजी पर आये और शुक्लध्यान के बल से केवलज्ञान प्रकट करके मोक्षपद को प्राप्त किया। उन्हें हमारा नमस्कार हो।

शास्त्रकार कहते हैं कि जगत में जीवों को धर्म की प्रेरणा देनेवाले मित्र के समान हितकारी अन्य कोई नहीं है।

"सच्चा मित्र हो तो ऐसा - जो धर्म की प्रेरणा दे।"

डरना और डराना दोनों कायरता है।

वज्रबाहु का वैराग्य

भगवान ऋषभदेव के इक्ष्वाकु वंश में, ऋषभदेव से लेकर मुनिसुव्रत तीर्थंकर तक के काल में असंख्य राजा मुनि होकर मोक्षगामी हुए। उनमें मल्लिनाथ भगवान के मोक्षगमन के बाद अयोध्या नगरी में विजय नाम के राजा हुए, उनके पौत्र वज्रबाहु कुमार की हस्तिनापुर की राजपुत्री मनोदया के साथ शादी हुई, शादी के थोड़े ही दिन बाद कन्या का भाई उदयसुंदर अपनी बहिन को लेने के लिए आया। मनोदया उसके साथ जाने लगी, उसी समय वज्रबाहु भी मनोदया के प्रति तीव्र प्रेम के वश उन्हीं के साथ ससुराल जाने लगे।

उदयसुंदर, मनोदया, वज्रबाहु आदि सभी आनंद पूर्वक अयोध्या से हस्तिनापुर की ओर जा रहे थे। साथ में उनके मित्र २६ राजकुमार और उनकी अनेक रानियाँ भी पर्वतों और वनों की रमणीय शोभा देखते हुये जा रहे थे। तभी युवा राजकुमार वज्रबाहु की नजर एकाएक रुक गयी......।

अरे, यहाँ दूर कोई अद्‌भुत सुन्दरता दिखाई दे रही है। वह क्या है ? या तो यह कोई वृक्ष का तना है, या सोने का कोई स्तंभ है या कोई मनुष्य है । जब पास आकर देखा तो कुमार आश्चर्य चकित रह गये।

अहो ! नग्न दिगम्बर मुनिराज ध्यान में खड़े हैं, आँखें बंद और लटकते हुए हाथ, संसार को भूलकर आत्मा में अन्दर-अन्दर गहराई में उतर कर कोई
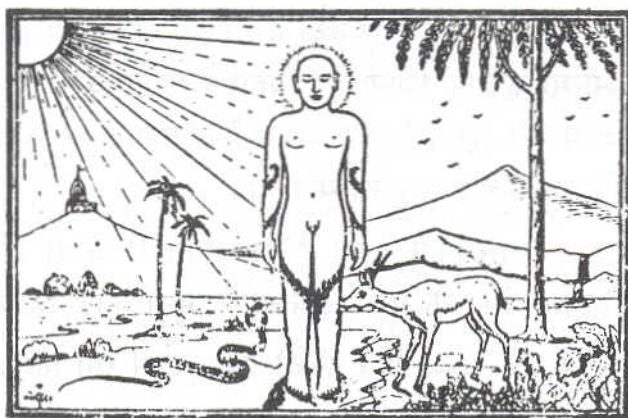
अद्भुत मोक्षसुख का वेदन कर रहे हैं।.......शांतरस की मस्ती में मस्त हैं, तप के द्वारा शरीर दुर्बल हो गया है, तो भी चैतन्य के तेज का प्रताप सर्वांग से शोभित हो रहा है.....हिरण और सर्प शांत होकर उनके पास बैठे हैं। अरे, उनकी शांत मुद्रा वन के पशुओं को भी ऐसी प्रिय लगती है कि वे भी शांत होकर बैठ गये हैं।

मुनि को देखकर कुमार वज्रबाहु विचार करते हैं–

"वाह ! धन्य है मुनिराज का जीवन ! वे आनंद से मोक्ष की रचना कर रहे हैं और मैं संसार के कीचड़ में फँसा हूँ, विषय-भोगों में डूब रहा हूँ, इन भोगों से हटकर मैं भी अब ऐसी योगदशा धारण करूँगा, तभी मेरा जन्म सफल होगा। इससमय सम्यक् आत्मभान होने पर भी, जैसे कोई चंदनवृक्ष जहरीले सर्प से लिपटा हो– ऐसा मैं विषय-भोगों के पापों से घिरा हुआ हूँ। जैसे कोई मूर्ख पर्वत के शिखर पर चढ़ कर ऊँघे.....वैसे ही मैं पाँच इन्द्रियों के भोगरूपी पर्वत के भयंकर शिखर पर सो रहा हूँ। हाय ! हाय !! मेरा क्या होगा ? धिक्कार है....धिक्कार है......भवभ्रमण करानेवाले इन विषय-भोगों को।

अरे, मैं एक स्त्री में आसक्त होकर मोक्षसुन्दरी को साधने में प्रमादी हो रहा हूँ...लेकिन क्षणभंगुर जीवन का क्या भरोसा? मुझे अब प्रमाद छोड़कर यह मुनिदशा धारण करके मोक्ष साधना में लग जाना चाहिये.....।"

ऐसे वैराग्य का विचार करते-करते वज्रबाहु की नजर मुनिराज के ऊपर स्थिर हो गई, वे मुनि भावना में ऐसे लीन हो गये कि आस-पास उदयसुंदर और मनोदया खड़े हैं, उनका ख्याल ही नहीं रहा। बस ! मात्र मुनि की ओर देखते ही रहे.....और उनके समान बनने की भावना भाते रहे।

– यह देखकर, उनका साला उदयसुंदर हँसता हुआ मजाक करते

हुए कहता है– "कुंवरजी ! आप निश्चल नेत्रों से मुनि की ओर क्या देख रहे हो ? अरे, आप भी ऐसी मुनिदशा धारण क्यों नहीं कर लेते।"

वज्रबाहु तो मुनिदशा की भावना भा ही रहे थे। उसने तुरन्त ही कहा– "वाह भाई ! तुमने अच्छी बात कही, मेरे मन में जो भाव था, उसे ही तुमने प्रकट किया, अब तुम्हारा भाव क्या है– उसे भी कहो।"

उदयसुंदर ने उस बात को मजाक समझकर कहा– "कुंवरजी ! जैसा तुम्हारा भाव, वैसा ही मेरा भाव ! यदि तुम मुनि हुए तो मैं भी तुम्हारे साथ मुनि होने के लिए तैयार हूँ। परन्तु देखो ! तुम मुकर न जाना !!"

(उदयसुंदर तो मन में अभी ऐसा ही समझ रहे थे कि वज्रबाहु को तो मनोदया के प्रति तीव्र राग है– ये क्या दीक्षा लेंगे ? अथवा उसने तो हँसी-हँसी में यह बात कही थी...... "शगुन के शब्द पहले" इस उक्ति के अनुसार वज्रबाहु के उत्तम भवितव्य से प्रेरित होकर वैराग्य जागृत करनेवाले यह शब्द भी निमित्त हो गये.....।)

उदयसुंदर की बात सुनते ही निकटभव्य मुमुक्षु वीर वज्रबाहु के मुख से वज्रवाणी निकली–

"बस अब मैं तैयार हूँ...... इसीसमय मैं इन मुनिराज के पास जाकर मुनि-दीक्षा अंगीकार करूँगा। वज्रबाहु आगे कहते हैं– "इस संसार और भोगों से उदास होकर मेरा मन अब मोक्ष में उद्यत हुआ है....संसार या सांसारिक भाव अब स्वप्न में भी नहीं दिखते...मैं तो अब मुनि होकर यहीं वन में रहकर मोक्षपथ की साधना करूँगा।"

पर्वत के ऊपर जैसे वज्र गिरता है, वैसे ही वज्रबाहु के शब्दों को सुनते ही उदयसुंदर के ऊपर मानो वज्र गिर गया, वह तो डर ही गया। अरे....यह क्या हो गया ?

वज्रबाहु तो प्रसन्नचित्त होकर विवाह के वस्त्राभूषण उतार कर वैराग्यपूर्वक मुनिराज की ओर जाने लगे।

मनोदया ने कहा– "अरे स्वामी ! यह आप क्या कर रहे हो ?"

उदयसुंदर ने भी अश्रुभीनी आँखों से कहा– "अरे कुंवरजी ! मैं तो हँसते-हँसते मजाक में कह रहा था, लेकिन तुम यह क्या कर रहे हो ? मजाक करने में मेरी गलती हुई है, अतः मुझे क्षमा करो ? आप दीक्षा मत लो......।"

उसी समय वैरागी वज्रबाहु मधुर शब्दों में कहने लगे–

"हे उदयसुंदर ! तुम तो मेरे कल्याण के कारण बने हो। मुझे जागृत करके तुमने मुझ पर उपकार किया है। इसलिए दुःख छोड़ो। मैं तो संसाररूपी कुएँ में पड़ा था, उससे तुमने मुझे बचाया, तुम ही मेरे सच्चे मित्र हो और तुम भी इसी मार्ग पर मेरे साथ चलो।"

वैरागी वज्रबाहु आगे कहने लगे– "जीव जन्म-मरण करते-करते अनादि से संसार में भ्रमण कर रहा है। जब स्वर्ग के दिव्य विषयों में भी कहीं सुख नहीं मिलता, तब अन्य विषयों की क्या बात ? अरे ! संसार, शरीर और भोग– ये सब क्षणभंगुर हैं। बिजली की चमक के समान जीवन मिलने पर भी यदि आत्महित न किया तो यह अवसर चला जावेगा। विवेकी पुरुषों को स्वप्न जैसे सांसारिक सुखों में मोहित होना योग्य नहीं है।

हे मित्र ! तुम्हारी मजाक भी मेरे आत्मकल्याण का कारण बन गयी है। प्रसन्न होकर औषधि सेवन करने से क्या वह रोग नहीं हरती ? अपितु हरती ही है। तुमने हँसते-हँसते जिस मुनिदशा की बात की है, वह

मुनिदशा भवरोग को हरनेवाली और आत्मकल्याण करनेवाली है, इसलिए मैं अवश्य ही मुनिदशा अंगीकार करूँगा और तुम्हारी जैसी इच्छा हो, तुम वैसा करो।''

उदयसुंदर समझ गया कि अब वज्रबाहु को रोकना मुश्किल है....अब वह दीक्षा लेंगे ही, फिर भी शायद मनोदया का प्रेम उन्हें रोक लें – ऐसा सोचकर उसने अन्तिम बात कही–

''कुमार! आप मनोदया की खातिर ही रुक जाओ। तुम्हारे बिना मेरी बहन अनाथ हो जायेगी। इसलिए उसके ऊपर कृपा करके आप रुक जाइये, आप दीक्षा मत लीजिए।''

परन्तु, मनोदया भी वीरपुत्री थी.... वह रोने नहीं बैठी.... बल्कि उसने तो प्रसन्नचित होकर कहा– 'हे बन्धु! तुम मेरी चिंता मत करो। वे जिस मार्ग पर जा रहे हैं, मैं भी उस ही मार्ग पर जाऊँगी। वे विषय-भोगों से छूटकर आत्मकल्याण करेंगे, तो क्या मैं विषयों में डूबकर मरूँगी ? नहीं, मैं भी उनके साथ ही गृहस्थदशा छोड़कर अर्जिका की दीक्षा लूँगी और आत्म-कल्याण करूँगी। धन्य है मेरा भाग्य !! अरे ! मुझे भी आत्महित करने का सुंदर अवसर मिला। रोको मत भाई ! तुम किसी को भी मत रोको ! कल्याण के मार्ग में जाने दो और संसार के मार्ग में मत फँसाओ ! तुम भी हमारे साथ उस ही मार्ग में आ जाओ।''

अपनी बहिन की दृढता को देखकर, अब उदयसुंदर के भावों में भी एकाएक परिवर्तन हो गया। उसने देखा कि मजाक सत्यता का रूप ले रहा है। अत: उसने कहा–

वाह....वज्रबाहु! और वाह.....मनोदया बहिन! धन्य हैं तुम्हारी उत्तम भावनाओं को ? तुम दोनों यहाँ दीक्षा लोगे तो क्या मैं तुम्हें छोड़कर राज्य में जाऊँगा ? नहीं, मैं भी तुम्हारे साथ मुनिदीक्षा लूँगा।''

वहाँ पर सभी की बातचीत सुन रहे २६ राजकुमार भी एक साथ बोल उठे– "हम भी वज्रबाहु के साथ ही दीक्षा लेंगे!"

दूसरी ओर से महिलाओं के समूह में से राजरानियों की भी आवाज आयी– "हम सभी भी मनोदया के साथ अर्जिका के व्रत लेंगी।"

बस, चारों ओर...गंभीर वैराग्य का वातावरण फैल गया। राजसेवक तो घबराहट से देख रहे हैं कि इन सबको क्या हो गया है ? इन सब राजकुमारों और राजरानियों को यहाँ छोड़कर हम राज्य में किस प्रकार जावें? वहाँ जाकर इन राजकुमारों के माता-पिताओं को क्या जवाब देंगे।

बहुत सोच-विचार करने के बाद एक मंत्री ने राजपुत्रों से कहा–

"हे कुमारो ! तुम्हारी वैराग्य भावना धन्य है....लेकिन हमें मुश्किल में मत डालो......तुम हमारे साथ घर चलो और माता-पिता की आज्ञा लेकर फिर दीक्षा ले लेना.....।"

तब वज्रबाहु बोले– "अरे, संसार बंधन से छूटने का अवसर आया, यहाँ माता-पिता को पूछने के लिए कौन रुकेगा ? हमें यहाँ आने के लिए माता-पिता मोह के वश होकर रोकेंगे, इसलिए तुम सब जाओ और माता-पिता को यह समाचार सुना देना कि आपके पुत्र मोक्ष को साधने के लिए गये हैं, इसलिए आप दुःखी मत होइये।"

तब मंत्री ने कहा– "कुमारो ! तुम हमारे साथ भले ही न चलो, परन्तु जब तक हम माता-पिता को खबर दें, तब तक यहीं रुक जाओ।"

"अरे ! हमें एक क्षण के लिए भी यह संसार नहीं चाहिये......जैसे प्राण निकलने के बाद फिर शरीर शोभा नहीं देता, उसीप्रकार जिससे हमारा मोह छूट गया, ऐसे इस संसार में अब क्षणमात्र के लिए भी हमें अच्छा नहीं लगता।"

–ऐसा कहकर वज्रबाहु एवं उदयसुंदर के साथ सब कुमार चलने लगे.....और मुनिराज के पास आये......।

गुणसागर महाराज के सामने सभी ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक नमस्कार किया फिर वज्रबाहु ने कहा–

"हे स्वामी ! हमारा मन संसार से बहुत भयभीत है, आपके दर्शन से हमारा मन पवित्र हुआ है। अब, हमें भवसागर को पार करनेवाली ऐसी भगवती दीक्षा अंगीकार कर संसार कीचड़ में से बाहर निकलने की इच्छा है, इसलिए हे प्रभु ! हमें दीक्षा दीजिए।"

जो चैतन्य साधना में मग्न है और अभी-अभी सातवें से छठवें गुणस्थान में आये हैं, ऐसे उन मुनिराज ने राजकुमारों की उत्तम भावना को जानकर कहा– "हे भव्यो ! अवश्य धारण करो, यह मोक्ष के कारणरूप भगवती जिनदीक्षा ! तुम सभी अत्यंत निकटभव्य हो, जो तुम्हें मुनिव्रत की भावना जागृत हुई" –ऐसा कहकर आचार्यदेव ने वज्रबाहु सहित २६ राजकुमारों को मुनिदीक्षा दी।

राजकुमारों ने मस्तक के कोमल केशों (बालों) को अपने हाथों से लोंच करके पंच महाव्रत धारण किये। राजपुत्री और रागपरिणति दोनों को त्याग दिया, देह का मोह छोड़कर चैतन्यधाम में स्थिर हुए और शुद्धोपयोगी होकर आत्म-चिंतन में एकाग्र हुए। धन्य है उन मुनिवरों को।

दूसरी और मनोदया ने भी पति और भाई के समान सांसारिक मोह छोड़कर आभूषण त्याग कर वैराग्यपूर्वक आर्यिका के व्रत धारण किये। साथ ही अनेक अन्य रानियाँ भी आर्यिका हुईं और एकमात्र सफेद वस्त्र को धारण करके देह में चैतन्य की साधना के द्वारा सुशोभित होने लगीं। स्फटिकमणि समान शुद्धोपयोग के आभूषण से सभी आत्मायें सुशोभित हो उठीं। उसी प्रकार वज्रबाहु आदि सब मुनिराज शुद्धोपयोग के द्वारा सुशोभित होने लगे।

धन्य है उन राजपुत्रों को ! और धन्य है उन राजरानियों को !!

जिस समय वज्रबाहु आदि की दीक्षा का समाचार अयोध्या में पहुँचा, उसीसमय उनके पिता सुरेन्द्रमन्यु तथा दादा विजय महाराज भी संसार से विरक्त हुए। अरे, अभी नवपरिणत युवा-पौत्र संसार छोड़कर मुनि हुए और मैं वृद्ध होते हुए भी अभी तक संसार के विषयों को नहीं छोड़ा और इन राजकुमारों ने संसार भोगों को तृणवत् समझकर छोड़ दिया और मोक्ष के अर्थ शांतभाव में चित्त को स्थिर किया।

ऊपर से सुंदर लगनेवाले विषयों का फल बहुत कटु होता है, यौवन दशा में शरीर का जो सुंदर रूप था, वह भी वृद्धावस्था में कुरूप हो जाता है। शरीर और विषय क्षणभंगुर हैं, ऐसा जानते हुए भी हम विषय-भोगरूपी कुएँ में डूबे रहे, तब हम जैसा मूर्ख कौन होगा ? ऐसा विचार करके वैराग्य भावना भायी, सब जीवों के प्रति क्षमाभाव पूर्वक विजय महाराज तथा उनके अन्य पुत्र भी जिनदीक्षा लेकर मुनि हुए। अरे... पौत्र के मार्ग पर दादा ने गमन किया। धन्य जैनमार्ग ! धन्य मुनिमार्ग !! धन्य हैं उस मार्ग पर चलनेवाले जीव !!!

विजय महाराज ने दीक्षा लेने के पूर्व बज्रबाहु के भाई पुरन्दर कों राज्य सोंपा। पुरन्दर राजा ने अपने पुत्र कीर्तिधर को राज्य सौंपकर दीक्षा

ली। बाद में कीर्तिधर ने भी पन्द्रह दिन के पुत्र सुकौशल का राजतिलक करके जिनदीक्षा ले ली और बाद में सुकौशल कुमार ने भी गर्भस्थ बालक का राजतिलक करके अपने पिता के पास जिनदीक्षा अंगीकार की।... इतना ही नहीं, उनकी माँ ने वाघिन होकर उन्हें खाया, फिर भी वे आत्म-ध्यान से नहीं डिगे और केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष प्राप्त किया। उसके बाद राजा दशरथ, रामचन्द्र भी उस ही वंश में हुये। ●

चौड़ी सड़क – सुन्दर मार्ग

दो मित्र बात कर रहे थे, उनमें अमेरिकन मित्र अपने जैन मित्र से बोला – "हमारे शहर की सड़कें इतनी चौड़ी हैं कि एक सड़क पर पूरे वेग (गति) के साथ एक साथ चार मोटरें जाती हैं और चार मोटरें आती हैं।

तब दूसरा जैन मित्र बोला – भाई, हमारी मोक्षपुरी की सड़क तो इतनी चौड़ी हैं कि उसमें असाधारण वेग (मोटर की अपेक्षा असंख्यात गुणी) से एक साथ एक सौ आठ जीव गमन कर सकते हैं। अमेरिका में तो मोटर की बहुत दुर्घटना होती होंगी, लेकिन हमारी इस मोक्षपुरी के मार्ग पर कोई दुर्घटना नहीं होती।

हाँ, यह सच है कि यह मार्ग मात्र "वन-वे" है, उस मार्ग में जा तो सकते हैं; परन्तु फिर लौटकर वापिस नहीं आ सकते।

सचमुच, यह मार्ग बहुत ही सुन्दर मार्ग है। इसका नाम है – मोक्षमार्ग।

कहा भी है – सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – इन तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग है। ●

सुकौशल का वैराग्य

इस कथा के पूर्व आपने जिनके वैराग्य की कथा पढी, उन वज्रबाहु के छोटे भाई पुरंदर अयोध्या के राजा थे। उन्होंने अपने पुत्र कीर्तिधर को राज्य सौंप कर मुनिदीक्षा ले ली।

राजा कीर्तिधर का मन संसार-भोगों से विरक्त था, वे धर्मात्मा राजपाट के बीच में भी संसार-भोगों की असारता का विचार करते हुए मुनिदशा की भावना भाते थे।

एक दिन दोपहर के समय आकाश में सूर्यग्रहण देखकर उनका मन उदास हो गया और वे संसार की अनित्यता का विचार करने लगे। अरे, जब यह सूर्य भी राहु के द्वारा ढक जाता है, तब इस संसार के क्षण-भंगुर भोगों की क्या बात ! वे तो एक क्षण में विनष्ट हो जाते हैं। इसलिए उनका मोह छोड़कर मैं आत्महित करने के लिए जिनदीक्षा अंगीकार करूँगा। राजा कीर्तिधर ने अपने वैराग्य का विचार मंत्रियों के सामने रखा।

मंत्रियों ने कहा– "महाराज ! आपके बिना अयोध्या नगरी का राज्य कौन संभालेगा ? अभी आप जवान हो......फिर भी जैसे आपके पिता ने आपको राज्यभार सौंपकर जिनदीक्षा ली थी, वैसे ही आप भी अपने पुत्र को राज्य सौंपकर दीक्षा ले लेना।"

–इस प्रकार मंत्रियों ने विनती की। इससे राजा ने ऐसी प्रतिज्ञा ली कि पुत्र के जन्म का समाचार सुनते ही उस ही दिन उसका राज्याभिषेक करके मैं मुनिव्रत धारण करूँगा।

थोड़े समय बाद, कीर्तिधर राजा की रानी सहदेवी ने एक सुंदर पुत्र को जन्म दिया.....उसका नाम सुकौशल रखा गया। यही सुकौशल कुमार अपनी इस कथा के कथानायक हैं।

"पुत्र जन्म की बात सुनते ही राजा दीक्षा ले लेंगे।"– इस भय से रानी सहदेवी ने यह बात गुप्त रखी। कुछ दिन तक तो यह बात राजा से गुप्त रही, परन्तु सूर्य-उदय कब तक छिपा रह सकता है ? उनके पुत्र जन्म की खुशखबरी पूरी अयोध्या नगरी में फैल गयी.... और जब नगरवासी राजा को बधाई देने आये, तब राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें अपने आभूषण भेंट किये...... और अपने वैराग्य का विचार प्रकट किया, तथा कहा कि –"बस, अब मैं राजपुत्र को राज्य सौंपकर इस संसार-बंधन से छूटूँगा" और तदनुसार राजा कीर्तिधर ने पंद्रह दिन की आयु के राजकुमार सुकौशल जो अभी तक माता की गोद में था, उसका राजतिलक करके स्वयं ने जिनदीक्षा धारण कर ली.....और आत्मसाधना में तत्पर होकर वन में विचरण करने लगे।

कीर्तिधर राजा मुनि हो गये, जिससे उनकी रानी सहदेवी को बहुत ही आघात हुआ, वह सोचने लगी कि कहीं इसीप्रकार मेरा पुत्र भी दीक्षा लेकर न चला जाय ? तभी किसी भविष्यवेत्ता ने घोषणा की, कि–

"जिस दिन यह राजकुमार अपने पिता को मुनि अवस्था में देखेगा, उसी दिन यह दीक्षा ले लेगा।"

कोई मुनि राजकुमार की नजर में न आ जाए, इसलिए रानी ने ऐसा आदेश निकाल दिया कि "किसी निर्ग्रंथ-मुनि को राजमहल के पास नहीं आने दिया जावे !"

अरे रे, पुत्र मोह से उसको मुनियों के प्रति द्वेष हो गया।

राजकुमार सुकौशल वैराग्यवंत धर्मात्मा था, राजवैभव के सुखों पें उसका मन नहीं रमता था। आत्मस्वरूप की भावना में लीन रहता था। युवा होते ही माता ने उसका विवाह कर दिया।

एक दिन सुकौशल राजमहल की छत पर बैठकर अयोध्या नगरी की सुन्दरता देख रहे थे। उनकी माता सहदेवी और धायमाता भी वहीं थी।

इसी समय एकाएक नगरी के बाहर नजर पड़ते ही राजकुमार को कोई महातेजस्वी मुनिराज नगरी की ओर आते दिखे; लेकिन राज्य के सिपाहियों ने उन्हें दरवाजे के बाहर ही रोक दिया, वह समझ नहीं पाया कि वे आनेवाले महापुरुष कौन हैं और पहरेदार उन्हें क्यों रोक रहे हैं ?

दूसरी ओर सहदेवी ने भी उन मुनिराज को देखा...... वे कोई दूसरे नहीं, महाराज कीर्तिधर ही थे, जिन्होंने १५ दिन के सुकौशल को छोड़कर दीक्षा ले ली थी। उनको देखते ही रानी को डर लगा कि अरे, उनके वैराग्य उपदेश से मेरा पुत्र भी कहीं संसार छोड़कर न चला जावे, इसलिए रानी सहदेवी ने सेवकों को आज्ञा दी–

"यहाँ कोई गंदगीयुक्त अनजान नग्न पुरुष नगरी में आये हैं और वे हमारे पुत्र सुकौशल को भ्रमित करके ले जावेंगे, इसलिए उन्हें नगरी में प्रवेश नहीं करने देवें। इसीप्रकार नगरी में कोई दूसरे नग्न साधु आवें तो उनको भी मत आने देवें, जिससे मेरा पुत्र उन्हें न देख पावे।

मेरे पति कीर्तिधर पंद्रह दिन के छोटे बालक को छोड़कर चले गये थे, तब उन्हें दया भी नहीं आयी थी।" – इसप्रकार सहदेवी ने साधु बने अपने पति के प्रति ऐसे अनादरपूर्ण वचनों से कई बार तिरस्कार किया.....।

"अरे रे ! यह दुष्ट रानी साधु बने अपने स्वामी का अपमान करती है।" – यह देखकर धायमाता की आँख में से आँसू गिरने लगे।

राजकुमार सुकौशल का कोमल हृदय यह दृश्य न देख सका, उसने तुरन्त धायमाता से पूछा–

"माँ, यह सब क्या है ? वे महापुरुष कौन हैं ? उन्हें नगरी में क्यों आने नहीं देते? और उन्हें देखकर तू क्यों रो रही है ?"

राजकुमार के प्रश्न को सुनते ही धायमाता का हृदय एकदम भर आया और रोते-रोते उसने कहा– "बेटा ! ये महापुरुष और कोई नहीं, तुम्हारे पिताजी हैं। वे इस अयोध्या नगरी के महाराजा कीर्तिधर स्वयं हैं और साधु हो गये हैं। अरे, जो कभी स्वयं इस राज्य के स्वामी थे, आज उन्हें उनके ही सेवक, उनके ही राज्य में, उन्हीं का अनादर कर रहे हैं। इस अयोध्या नगरी के राजमहल में कभी किसी साधु का अनादर नहीं हुआ, किन्तु आज साधु हुए महाराज का अनादर राजमाता द्वारा ही हो रहा है, राजमाता अपने स्वामी और नग्न दिगम्बर साधु को मैला-कुचैला भिखारी जैसा कहकर तिरस्कार कर रही है।"

धायमाता ने सुकौशल से आगे कहा– "बेटा ! जब तू छोटा-सा बालक था, तभी वैराग्य धारण करके तुम्हारे पितां जैन साधु हो गये थे। वे साधु महात्मा ही इससमय नगरी में पधारे हैं.... आहार के लिए पधारे कोई भी मुनिराज अपने आँगन से कभी वापिस नहीं गये।

पुत्र को राज्य सौंप कर दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करें– ऐसी परम्परा तो असंख्यात पीढियों से अपने वंश में चली आ रही है और उसी के अनुसार तुम्हारे पिता ने तुम्हें राज्य सौंप कर जिनदीक्षा धारण की है।"

–जब धायमाता ने ऐसा कहा, तब उसे सुनते ही सुकौशलकुमार को बहुत आश्चर्य हुआ। "अरे, यह मेरे पिताजी! ये भिखारी नहीं, ये तो महान सन्त महापुरुष हैं। महाभाग्य से आज मुझे इनके दर्शन हुए।"

ऐसा कहते हुए राजकुमार सिर का मुकुट और पैर में जूते पहने बिना ही नंगे सिर और नंगे पैर ही नगर के बाहर मुनिराज (पिता) की ओर दौड़े....और उनके पास से धर्म की विरासत लेने के लिए दौड़े.....जैसे कि संसार के बंधन तोड़कर मुक्ति की ओर दौड़ रहे हों ?

इसप्रकार वे मुनिराज के पास पहुँचे....और उनके चरणों में नमन किया....आँख में से आँसू की धारा बहने लगी।

"मुनिवर ! क्षमा करो.....प्रभो ! मैंने आपको पहचाना नहीं। मैं अब इस संसार के बंधन से मुक्त होना चाहता हूँ......।"

श्री कीर्तिधर मुनिराज बोले– "हे वत्स ! इस संसार में सब संयोग क्षणभंगुर हैं। उसके भरोसे क्या रहना? यह सारभूत आत्म तत्त्व ही आनंद से भरपूर है, उसकी साधना के बिना अन्य कोई शरण नहीं.......।"

इसप्रकार श्री कीर्तिधर महाराज ने वैराग्य से भरपूर धर्मोपदेश दिया। धर्मपिता महाराज कीर्तिधर से उपदेश सुनकर राजकुमार सुकौशल का हृदय बहुत तृप्त हुआ....ऐसे असार-संसार से उनका मन विरक्त हो गया... और तब शांतचित्त से विनयपूर्वक हाथ जोडकर प्रार्थना की–

"प्रभो ! मुझे भी जिनदीक्षा देकर अपने जैसे बना लीजिये, मैं तो मोहनिद्रा में सो रहा था, आपने मुझे जगाया.....आप जिस मोक्ष-साम्राज्य की साधना कर रहे हो ....मुझे भी वैसा ही मोक्ष-साम्राज्य चाहिये। और वह राजकुमार उसी समय दीक्षा लेने तैयार हो गया।

इसी समय वहाँ राजमाता सहदेवी और राजकुमार सुकौशल की गर्भवती रानी विचित्रमाला, उनके मंत्री आदि सभी वहाँ आ पहुँचे....।

उन्होंने राजकुमार से कहा – "हे राजकुमार ! भले ही तुम दीक्षा ले लो.....हम नहीं रोकेंगे। लेकिन तुम्हारे वंश में ऐसा रिवाज है कि पुत्र बड़ा होने पर, उसे राज्य सौंपकर राजा दीक्षा लेता है.... इसलिए आप भी रानी विचित्रमाला के बालक को बड़ा हो जाने दें, तब उसे राज्य सौंपकर फिर दीक्षा ले लेना....।"

राजकुमार ने कहा– "जब वैराग्यदशा जागी, तब उसे संसार का

कोई बंधन रोक नहीं सकता; फिर भी, देवी विचित्रमाला के गर्भ में जो बालक है, उसका राजतिलक करके मैं उसको राज्य सौंपता हूँ।''

– ऐसा कहकर वहीं के वहीं गर्भस्थ बालक को अयोध्या का राज्य सौंपकर, सुकौशल कुमार ने अपने पिता कीर्तिधर मुनिराज के पास जिनदीक्षा ले ली...... पिता के साथ ही पुत्र भी संसार के बंधन तोड़कर मोक्षपथ में चलने लगा। कल का राजकुमार राजवैभव छोड़कर मोक्षरूपी आत्मवैभव को साधने लगा। क्षणभर पहले का राजकुमार अब मुनि होकर आत्मध्यान से सुशोभित होने लगा।
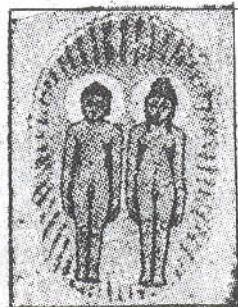
धन्य है उनका आत्मज्ञान..... धन्य उनका वैराग्य ! राजकुमार सुकौशल के वैराग्य की कहानी पूरी हुई, अब उनकी माता का क्या हुआ, उसे अगली कहानी में पढ़ो !

स्वसंवेद्य पदार्थ हैं

एक अंधेरे कमरे में जीवाभाई बैठा है।

बाहर से काना भाई ने पूछा– अरे, अंदर कौन है ?

जीवा भाई कहता है– अंधा है क्या ? दिखता नहीं।

तब काना भाई ने फिर पूछा – तुम अंदर हो या नहीं ?

जीवा भाई बोला– हाँ, मैं तो हूँ। देखो, चाहे जितने घने अंधेरे में भी मैं हूँ।

इसी प्रकार आत्मा अपने अस्तित्व को जान सकता है। उसे अपने को जानने के लिए अन्य प्रकाश आदि की जरूरत नहीं पड़ती है। इसप्रकार आत्मा स्वयं अपने को जाननेवाला स्वसंवेद्य परम पदार्थ है।

वाघिन का वैराग्य

कीर्तिधर मुनिराज के पास जब सुकौशल पुत्र ने दीक्षा ले ली, तब सुकौशल की माता सहदेवी को बहुत आघात लगा। पिता और पुत्र दोनों मुनि हो गये, इससे तीव्र मोह को लेकर सहदेवी ने उस मुनिधर्म की निंदा की..... धर्मात्माओं का अनादर किया.... और क्रूर परिणाम करके आर्त्तध्यान करते-करते वह मरी और मरकर वाघिन हुई.....।

अरे, जिसका पति मोक्षगामी, जिसका पुत्र भी मोक्षगामी – ऐसी वह सहदेवी, धर्म और धर्मात्मा के तिरस्कार करने से वाघिन हुई.....। अतः बन्धुओ ! जीवन में कभी धर्म या धर्मात्मा के प्रति अनादर नहीं करना, उनकी निंदा नहीं करना।

अब वाघिन हुई वह राजमाता, एक जंगल में रहती थी, वह जंगल के जीवों की हिंसा करती और अत्यंत दुःखी रहती....उसे कहीं भी चैन नहीं पड़ती।

एकबार जिस जंगल में वह वाघिन रह रही थी, उस ही जंगल में मुनिराज कीर्तिधर तथा सुकौशल आकर शांति से आत्मा के ध्यान में बैठ गये....। वे वीतरागी शांति का महा-आनंद लेने लगे।

वाघिन ने दोनों को देखा.....देखते ही क्रूर भाव से गर्जना की, और सुकौशल मुनिराज के ऊपर छलांग मारकर उन्हें खाने लगी....।

कीर्तिधर मुनिराज और सुकौशल मुनिराज दोनों तो आत्मा के ध्यान में हैं और वाघिन मुनिराज को खा रही है, वे मुनि आत्मा के ध्यान में ऐसे लीन हो गये कि शरीर का क्या हो रहा है – उसकी ओर उनका लक्ष्य भी नहीं गया। आत्मा का अनुभव करते-करते उस ही समय सुकौशल मुनिराज ने तो केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष प्राप्त किया। तथा कीर्तिधर मुनिराज ध्यान में ही मग्न रहे।

अहा ! धन्य है उन मुनिराजों को, उनके जीवन को !

इधर सुकौशल मुनि के शरीर को खाते-खाते वाघिन की नजर उनके हाथ के ऊपर पड़ी...... हाथ में एक चिन्ह देखते ही वह आश्चर्यचकित रह गयी। उसके मन में विचार आया कि यह हाथ मैंने कहीं देखा है.... और तुरन्त ही उसे पूर्वभव का जातिस्मरण ज्ञान हुआ।

"अरे, यह तो मेरा पुत्र ! मैं इसकी माता। अरे रे, अपने पुत्र को ही मैंने खा लिया।" – इसप्रकार के पश्चाताप के भाव से वह वाघिन रोने लगी, उसकी आँखों में से आँसुओं की धारा बहने लगी।

उसी समय कीर्तिधर मुनिराज का ध्यान टूटा और उन्होंने वाघिन को उपदेश दिया – "अरे वाघिन ! (सहदेवी) पुत्र के प्रति विशेष प्रेम के कारण ही तेरी मृत्यु हुई, उस ही पुत्र के शरीर का तूने भक्षण किया ? अरे रे, इस मोह को धिक्कार है। अब तुम इस अज्ञान को छोड़ो और क्रूर भावों को त्यागकर आत्मा को समझकर अपना कल्याण करो !"

मुनिराज के उपदेश को सुनकर तुरंत ही उस वाघिन ने धर्म प्राप्त किया, आत्मा को समझकर उसने माँस-भक्षण छोड़ दिया, फिर वैराग्य से संन्यास धारण किया और मरकर देवलोक में गई। यहाँ श्री कीर्तिधर मुनि भी केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गये।

(राजा रघु और राम आदि महापुरुष भी कीर्तिधर राजा के वंश में ही हुए हैं।

पाठको ! धर्मात्मा-ज्ञानियों के जीवन में वैराग्य समाहित होता है, उसे इस कहानी से समझना चाहिये और आत्मा को समझकर ऐसा वैरागी-जीवन जीने की भावना करनी चाहिये। उस वाघिन जैसे हिंसक प्राणी ने भी आत्मज्ञान प्राप्त कर किसप्रकार अपना कल्याण किया, उसे जानकर हे भव्य जीवो ! तुम भी मिथ्यात्व आदि समस्त प्रकार के पाप भाव छोड़कर आत्मज्ञान प्राप्त करो। ●

एक था हाथी

एक था हाथी.....बहुत ही बड़ा हाथी ! बहुत ही सुन्दर हाथी ! यह बात रामचन्द्रजी के समय की है।

राजा रावण एक समय लंका की ओर जा रहे थे, तभी बीच में श्री सम्मेदशिखर-क्षेत्र को देखकर रावण को बहुत खुशी हुई और पास में ही उसने पड़ाव डाला।
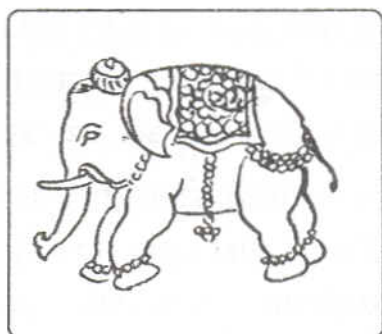
वहाँ एकाएक मेघ-गर्जना की आवाज सुनाई देने लगी, लोग भय से यहाँ-वहाँ भागने लगे, लश्कर के हाथी, घोड़े आदि भी डर से चीत्कार करने लगे। रावण ने इस कोलाहल को सुनकर देखा कि एक बहुत मोटा और अत्यंत बलवान हाथी झूमता-झूमता आ रहा है, यह उसकी ही गर्जना है और उससे ही डरकर लोग भाग रहे हैं, हाथी बहुत ही सुन्दर था। उस मदमस्त हाथी को देखकर रावण खुश हुआ, उसे उस हाथी के ऊपर सवारी करने का मन होने लगा, हाथी को पकड़ने के लिए वह आया और हाथी के सामने गया, रावण को देखते ही हाथी उसके सामने ही दौड़ने लगा, लोग आश्चर्य से देखने लगे कि अब क्या होगा ?

राजा रावण बहुत ही बहादुर था, 'गजकेली' में अकेले ही हाथी के साथ खेलने की कला में होशियार था। पहले उसने अपने कपड़ों का गड्ढा बनाकर हाथों के सामने फैंका, हाथी उस कपड़े को सूँघने के लिए रुक गया, उसी समय छलांग मारकर उस हाथी के मस्तक के ऊपर चढ़ गया और उसके कुंभस्थल पर मुट्ठी से प्रहार करने लगा।

हाथी घबरा गया, उसने सूँड ऊपर करके रावण को पकड़ने की बहुत चेष्टा की, फिर भी रावण उसके दोनों दंतशूल के बीच से सरक कर

नीचे उतर गया। इसप्रकार रावण ने कई बार हाथी के साथ खेल कर हाथी को थका दिया और फिर रावण हाथी की पीठ पर चढ़ गया। जैसे हाथी भी राजा रावण को समझ गया होवे – इसतरह शांत होकर विनयवान सेवक की भाँति खड़ा हो गया। रावण उसके ऊपर बैठकर पडाव की ओर आया। वहाँ चारों ओर जय-जयकार होने लगी।

रावण को यह हाथी बहुत अच्छा लगा, इसलिये उसे वह लंका ले गया। लंका जाकर उस हाथी की प्राप्ति की खुशी में उत्सव मनाकर उसका नाम त्रिलोकमण्डल रखा। रावण के लाखों हाथियों में से वह प्रमुख हाथी था।

एक बार रावण सीता का हरण करके ले गया। तब राम-लक्ष्मण ने लड़ाई करके रावण को हराया और सीता को लेकर अयोध्या आये, उसीसमय लंका से उस त्रिलोकमण्डन हाथी को भी साथ ले आये। राम-लक्ष्मण के ४२ लाख हाथियों में वह सबसे बड़ा था और उसका बहुत मान था।

राम के भाई भरत अत्यंत वैरागी थे, जैसे शिकारी को देखकर हिरण भयभीत होता है, उसीप्रकार भरत का चित्त संसार के विषय-भोगों से अत्यंत भयभीत था और वे संसार से विरक्त होकर मुनि होने के लिए उत्सुक थे।

जिसप्रकार पिंजरे में कैद सिंह खेदखिन्न रहता है और वन में जाने की इच्छा करता है, उसी प्रकार वैरागी भरत गृहवासरूपी पिंजरे से छूट कर वनवासी मुनि बनना चाहते थे। लेकिन राम-लक्ष्मण ने आग्रह करके उन्हें रोक लिया। उन्होंने उदास मन से कुछ समय तो घर में बिताया, लेकिन अब तो रत्नत्रयरूपी जहाज में बैठकर संसार-समुद्र से पार होने के लिए तैयार थे।

एक बार भरत सरोवर के किनारे गये, उसी समय गजशाला में क्या हुआ उसे सुनो !

गजशाला में बँधा त्रिलोकमण्डन हाथी मनुष्यों की भीड़ देखकर एकाएक गर्जना करने लगा और सांकल तोड़कर भयंकर आवाज करते हुए भागने लगा। हाथी की गर्जना सुनकर अयोध्या-वासी भयभीत हो गये, हाथी तो दौड़ने लगा, राम-लक्ष्मण उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ने लगे। दौड़ते-दौड़ते वह हाथी सरोवर के किनारे जहाँ भरत थे, वहाँ आया। लोग चिंतित हो गये – हाय ! हाय !! अब क्या होगा ? रानियाँ और प्रजाजन रक्षा के लिए भरत के पास आये। उनकी माँ कैकेयी भी भय से हाहाकार करने लगी।

हाथी दौड़ते-दौड़ते भरत के पास आकर खड़ा हो गया, भरत ने हाथी को देखा और हाथी ने भरत को देखा। बस, भरत को देखते ही हाथी एकदम शांत हो गया, और उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया, उससे उसने जाना कि "अरे, हम दोनों मुनि हुए थे और फिर छठवें स्वर्ग में दोनों साथ थे।

अरे रे ! पूर्वभव में मैं और भरत साथ में ही थे। परन्तु मैंने भूल की उससे मैं देव से पशु हुआ। अरे ! इस पशु पर्याय को धिक्कार है !"
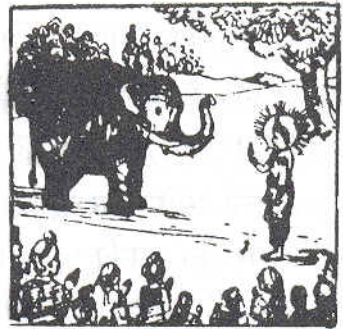
भरत को देखते ही हाथी एकदम शांत हो गया और जैसे गुरु के पास शिष्य विनय से खड़ा रहता है, वैसे ही भरत के पास हाथी विनय से खड़ा हो गया। भरत ने प्रेम से उसके माथे पर हाथ रखकर मूक स्वर में कहा – "अरे गजराज ! तुम्हें यह क्या हुआ ? तुम शांत हो !! यह क्रोध तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम चैतन्य की शांति को देखो।"

भरत के मधुर वचन सुनते ही हाथी को बहुत शांति मिली, उसकी आँखों में से आँसू गिरने लगे, वैराग्य से विचार करने लगा कि –

"अरे, अब पश्चाताप करने से क्या लाभ ? अब मेरा आत्म कल्याण हो और मैं इस भवदुःख से मुक्त होऊँ। ऐसा उपाय करूँगा।"

इसप्रकार परम वैराग्य का चिन्तन करते हुए हाथी एकदम शांत होकर भरत के सामने टुकुर-टुकुर (एकटक) देखते खड़ा रहा। जैसे कह रहा हो –

"हे बंधु ! तुम पूर्वभव के मेरे मित्र हो, पूर्वभव में स्वर्ग में हम दोनों साथ थे, अब मेरा आत्मकल्याण कराकर इस पशुगति से मेरा उद्धार करो।"

(वाह रे वाह ! धन्य हाथी ! उसने हाथी होकर भी आत्मा के कल्याण का महान कार्य किया। पशु पर्याय में होने पर भी परमात्मा को समझने के लिए अपना जीवन सार्थक किया।)

हाथी को एकाएक शांत हुआ देखकर लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ– "अरे यह क्या हुआ ! भरत ने हाथी के ऊपर कैसा जादू किया ? वह एकाएक शांत कैसे हो गया ?"

भरत उसके ऊपर बैठकर नगरी में आया और हाथी को गजशाला में रखा, महावत उसकी खूब सेवा करते हैं, उसे मोहित करने के लिए संगीत करते हैं, उसको प्रसन्न करने का उपाय करते हैं।

– लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि हाथी अब कुछ खाता नहीं, संगीत आदि पर भी ध्यान नहीं देता, सोता भी नहीं, क्रोध भी नहीं करता, वह एकदम उदास ही रहता है। अपने आप में आँख बंद करके शांत होकर बैठा रहता है और आत्महित की बात ही विचारता रहता है। जाति-स्मरण को प्राप्त करके उसका मन संसार और शरीर से अत्यंत विरक्त हो गया है.....।

इसी प्रकार खाये-पिये बिना ही एक दिन हो गया, दो दिन हो गये, चार दिन हो गये.....तब महावत ने श्री राम के पास आकर कहा--

"हे देव ! यह हाथी चार दिन से न कुछ खाता-पीता है, न सोता है और न ही क्रोध करता है। शांत होकर बैठा रहता है और पूरे दिन न जाने किसका ध्यान करता है। उसे रिझाने के लिए हमने बहुत प्रयत्न किये, लेकिन उसके मन में क्या है ? पता ही नहीं चलता, बड़े-बड़े गजवैद्यों को दिखाया, वे भी हाथी के रोग को नहीं जान सके- यह हाथी अपनी सेना की शोभा है। यह बड़ा बलवान है – इसे एकाएक यह क्या हो गया ? वह हमारी समझ में नहीं आता, इसलिए आप ही कोई उपाय कीजिए !

इसी समय अचानक एक सुन्दर बनाव बना। अयोध्या नगरी में दो केवली भगवंत पधारे.....उनके नाम थे – देशभूषण और कुलभूषण। (राम और लक्ष्मण ने वन गमन के समय वंशस्थ पर्वत पर इन दो मुनिवरों के उपसर्ग को दूर करके बहुत भक्ति की थी और उसी समय उन दोनों मुनिवरों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।) वे जगत के जीवों का कल्याण करते-करते अयोध्या नगरी में पधारे। भगवान के पधारने से पूरी नगरी में आनंद ही आनंद छा गया। सब उनके दर्शन करने के लिए चले...... राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भी उस त्रिलोकमण्डन हाथी के ऊपर बैठकर उन भगवन्तों के दर्शन करने के लिए आये..... और धर्मोपदेश सुनने के लिए बैठे। भगवान ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग का अद्भुत उपदेश दिया, उसे सुनकर सभी बहुत आनंदित हुए।

त्रिलोकमण्डन हाथी भी उन केवली भगवन्तों के दर्शन से बहुत ही प्रसन्न हुआ और धर्मोपदेश सुनकर उसका चित्त संसार से उदास हो गया, उसने अपूर्व आत्म शांति प्राप्त की। उसने भगवन्तों को नमस्कार करके श्रावक के व्रत अंगीकार किये।

धन्य है गजराज तुमको ! तुमने आत्मा को समझकर जीवन सफल बनाया ! तुम पशु नहीं देव हो, धर्मात्मा हो, देवों से भी महान हो।

बालको, देखो ! जैनधर्म का प्रताप !! एक हाथी जैसा पशु का जीव भी जैनशासन प्राप्त करके कितना महान हो गया ! तुम भी ऐसे महान जैनशासन को प्राप्त करके, हाथी की भाँति आत्मा को समझकर, उत्तम वैराग्यमय जीवन जियो !

आगे क्या हुआ – यह जानने के लिए ''भरत और हाथी'' नामक कहानी पढ़ें।

भरत और हाथी

भगवान के उपदेश सुनकर महाराज लक्ष्मण ने पूछा –

''हे भगवन् ! यह त्रिलोकमण्डन हाथी पहले गजबन्धन तोड़कर क्यों भागा ? और फिर भरत को देखकर एकाएक शांत क्यों हो गया ?''

तब भगवान की वाणी में आया कि भरत का जीव और हाथी का जीव दोनों पूर्वभव के मित्र हैं।

उनके पूर्वभव का वृत्तान्त इसप्रकार है, उसे सुनो – ''भरत और त्रिलोकमण्डन हाथी दोनों जीव बहुत भव पहले भगवान ऋषभदेव के समय में चंद्र और सूर्य नाम के दो भाई थे। मारीचि के मिथ्या उपदेश से कुधर्म की सेवा करके दोनों ने बंदर, मोर, तोता, सर्प, हाथी, मेंढक, बिल्ली, मुर्गा आदि बहुत भव धारण किये और दोनों ने एक-दूसरे को बहुत बार मारा, कई बार भाई हुए, फिर पिता-पुत्र हुए। इसप्रकार भवभ्रमण करते-करते कितने ही भव बाद भरत का जीव तो जैनधर्म प्राप्त कर मुनि होकर छठे स्वर्ग में गया। और यह हाथी का जीव भी पूर्वभव में वैराग्य प्राप्त करके मृदुयति नाम का मुनि हुआ।

एकबार एक नगर में दूसरे एक महाऋद्धिधारी मुनिराज बहुत गुणवान और तपस्वी थे, उन्होंने चार्तुमास में चार माह के उपवास किये,

और फिर चार्तुमास पूरा होने पर अन्यत्र विहार कर गये। हाथी का जीव यानी वे ही मृदुयति मुनि तभी उस नगर में आये, तब भूल से लोगों ने उन्हें ही महा-तपस्वी समझ लिया और सम्मान करने लगे। उन्हें ख्याल आया कि लोग भ्रम से मुझे ऋद्धिधारी तपस्वी समझ कर मेरा आदर कर रहे हैं – ऐसा जानते हुए भी मान (घमण्ड) के वश में उन्होंने लोगों को सच्ची बात नहीं बताई, कि पहले तपस्वी मुनिराज तो दूसरे थे और मैं दूसरा हूँ।

अत: शल्यपूर्वक मायाचार करने का परिणाम उनके तिर्यंचगति के बन्ध का कारण बना; लेकिन मुनिपने के प्रभाव से वह जीव वहाँ से मर कर प्रथम तो छठे स्वर्ग में गया। भरत का जीव भी वहाँ था, वे दोनों देव मित्र थे। उनमें से एक तो इस अयोध्या का राजपुत्र भरत हुआ है और दूसरा जीव मायाचारी के कारण यह हाथी हुआ है। उसके मनोहर रूप को देखकर लंका के राजा रावण ने उसे पकड़ लिया और उसका नाम त्रिलोकमण्डन रखा। रावण को जीतकर राम-लक्ष्मण उस हाथी को यहाँ ले आये। लोगों की भीड़ देखकर घबराहट से वह बंधन को तोड़कर भागा था। लेकिन पूर्वभव के मित्रों का मिलन होने से पूर्वभव के संस्कार जागृत होने से भरत को देखते ही हाथी पुन: शान्त हो गया। उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ है और अपने पूर्वभव की बात सुनकर वह संसार से एकदम उदास हो गया है, और अब आत्मा की साधना में उसने अपना मन लगाया है उसने श्रावक के व्रत अंगीकार किये हैं...... वह भी निकटभव्य है।''

देशभूषण-केवली की सभा में अपने पूर्वभव की बात सुनकर वैरागी भरत ने वहीं जिनदीक्षा धारण कर ली और फिर केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष प्राप्त किया। उनका मित्र त्रिलोकमण्डन हाथी भी संसार से विरक्त हुआ, उसने भी आत्मानुभव प्रकट करके श्रावक के व्रत अंगीकार किये। वाह ! हाथी का जीव श्रावक बना.... पशु होने पर भी देवों से भी महान बना और अब अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करेगा।

श्री देशभूषण-केवली प्रभु की वाणी में हाथी की सरस बात सुनकर राम-लक्ष्मण आदि सभी आनंदित हुए। हे भव्य पाठको ! तुम्हें भी आनंद आया होगा। और हाँ ! तुम भी हाथी के समान अपनी आत्मा को जिनधर्म में लगाओगे और मान-माया आदि सभी प्रकार के विकारी भावों को छोड़ोगे, तो तुम्हारा भी कल्याण होगा।

हाथी और भरत के पूर्वभव की बात सुनकर राम-लक्ष्मण आदि सभी को आश्चर्य हुआ। भरत के साथ एक हजार राजा भी जिन दीक्षा लेकर मुनि हुए। भरत की माता कैकेयी भी जिनधर्म की परम भक्त बनकर, वैराग्य प्राप्त कर आर्यिका हुई। उनके साथ ३०० स्त्रियों ने भी पृथ्वीमति माताजी के पास जिनदीक्षा ली। (बाद में सीताजी भी उन पृथ्वीमति माताजी के संघ में आ गयी थी।)

त्रिलोकमण्डन हाथी का हृदय तो केवली भगवान के दर्शन से फूला नहीं समा रहा था, पूर्वभव को सुनकर और आत्मज्ञान प्राप्त करके वह एकदम शांत हो गया ! सम्यग्दर्शन सहित वह हाथी वैराग्यपूर्वक रहता और श्रावक के व्रतों का पालन करता है, पन्द्रह-पन्द्रह दिन या महिने-महिने भर के उपवास करता है। अयोध्या के नगरजन बहुत वात्सल्यपूर्वक उसे शुद्ध आहार-पानी के द्वारा उसको भोजन कराते हैं। ऐसे धर्मात्मा हाथी को देखकर सब उसके ऊपर बहुत प्रेम करते हैं। तप करने से धीरे-धीरे उसका शरीर दुर्बल होने लगा और अन्त में धर्मध्यान पूर्वक, देह छोड़कर वह छठवें स्वर्ग में गया..... और अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त किया।

बालको, हाथी की सरस चर्चा पूरी हुई, उसे पढ़कर, तुम भी हाथी जैसे बनो, हाथी जैसे मोटे नहीं, लेकिन हाथी जैसे धर्मात्मा हो जाओ..... आत्मा को समझकर मोक्ष की साधना करो।

जो स्वभाव में जीता है, वह सुखी और जो संयोगों में जीता है, वह दुःखी।

दूसरे हाथी की आत्मकथा

(पाठको ! पहले तुमने ''त्रिलोकमण्डन'' नाम के हाथी की कहानी पढ़ी, अब यह दूसरे हाथी की कहानी उसके मुख से सुनकर तुम आनंदित होओगे।)

धर्मात्मा हाथी अपनी जीवन कथा कहता है –

भगवान ऋषभदेव के पुत्र महाराज बाहुबली की राजधानी पोदनपुर....जहाँ से असंख्यात राजा मोक्षगामी हुए।..... बाद में एक अरविंद नाम का राजा हुआ ..... मैं (हाथी का जीव) पूर्वभव में इसी अरविंद महाराजा के मंत्री का पुत्र था, मेरा नाम मरुभूति था और कमठ मेरा बड़ा भाई था।

एक बार हमारे भाई कमठ ने क्रोधावेश में आकर पत्थर की बड़ी शिला पटक कर मुझे मार दिया..... सगे भाई ने बिना किसी अपराध के मुझे मार डाला.... रे संसार !

उस समय मैं अज्ञानी था, इसलिए आर्त्तध्यान से मर कर तिर्यंच गति में हाथी हुआ, मुझे लोग 'वज्रघोष नाम से बुलाते थे।

मेरा भाई कमठ क्रोध से मरकर भयंकर सर्प हुआ।

तथा महाराजा अरविंद दीक्षा लेकर मुनि हुए।

हाथी अपनी आपबीती बताते हुए आगे कहता है – हाथी के इस भव में मुझे कहीं आराम नहीं मिलता था..... मैं बहुत क्रोधी और विषयासक्त था..... सम्मेदशिखर के पास एक वन में रहता था, भविष्य में जहाँ से मैं मोक्ष प्राप्त करूँगा – ऐसे महान सिद्धधाम के समीप रहते हुए भी उस समय मेरी आत्मा सिद्धपंथ को नहीं जानती थी। उस वन का अपने को राजा मानने से वहाँ से निकलनेवाले मनुष्यों एवं अन्य जानवरों को मैं बहुत त्रास (दुःख) देता था।

एक बार एक महान संघ सम्मेदशिखरजी तीर्थ की यात्रा करने जा रहा था, हजारों मनुष्यों की भीड़ थी। हमारे राजा अरविंद – जो मुनि हो गये थे। वे मुनिराज भी इस संघ के साथ ही थे..... लेकिन पहले मुझे इस बात की खबर नहीं थी।

उस महान संघ ने मेरे वन में पडाव डाला..... मेरे वन में इस संघ का कोलाहल मुझसे सहन नहीं हुआ... क्रोध से पागल होकर मैं दौड़ने लगा और जैसे ही कोई मेरे चंगुल में आया, उसको मैं कुचलने लगा..... कितने ही मनुष्यों को सूँड से पकड़कर ऊँचा उछाला, कितने ही को पैर के नीचे कुचल डाला..... रथ, घोड़ा वगैरह भी तोड़-फोड़ दिये। संघ में चारों ओर हा-हाकार और भगदड़ मच गई।

क्रोध के आवेग में दौड़ते-दौड़ते मैं एक वृक्ष के पास आया..... वृक्ष के नीचे एक मुनिराज बैठे थे.... उन्होंने अत्यंत शांत-मधुर मीठी नजरों से मेरी ओर देखा.... हाथ ऊँचा करके वे मुझे आशीर्वाद दे रहे थे... अथवा मानो आदेश दे रहे थे कि "रुक जा"।

मुनिराज को देखते ही अचानक क्या हुआ कि मैं स्तब्ध रह गया। क्रोध को मैं भूल गया..... मुनिराज सामने ही देख रहे थे..... मुझे बहुत अच्छा लगा... जैसे वे मेरे कोई परिचित हों – इसप्रकार मुझे प्रेम भाव जाग गया।

अहा, मुनिराज के सान्निध्य से क्षणमात्र में मेरे परिणाम चमत्कारिक ढंग से पलट गये.... क्रोध के स्थान पर शांति मिल गई।

मैं टकटकी लगाकर देख रहा था.... वहाँ मुनिराज करुणादृष्टि से मुझे संबोधते हुए बोले – "हे गजराज ! हे मरुभूति ! तू शांत हो ! तुझे क्रूरता शोभा नहीं देती.... पूर्वभव में तू मरुभूति था और अब भरत क्षेत्र का तेईसवाँ तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ होगा। तुम्हारी महान आत्मा इस क्रोध से भिन्न, अत्यंत शांत चैतन्य स्वरूप है..... उसे तू जान !"

अहा ! मुनिराज मुझे अत्यंत मधुर रस पिला रहे थे.... मैं मुग्ध होकर उनकी ओर देखता रहा..... इतने में मेरी नजर उनकी छाती के श्री वत्स चिह्न के ऊपर पड़ी..... मेरे अन्तर में स्मृति जागी.... अरे, इन्हें तो मैंने पहले भी कभी देखा है ! ये कौन हैं ? ये तो मेरे राजा अरविंद है, अहा! ये राजपाट छोड़कर मुनिदशा में वीतरागता से कैसे सुशोभित हो रहे हैं !! इनके पास मुझे कितनी शांति मिल रही है ! अहो, इन मुनिराज की निकटता प्राप्त करने से मैं क्रोध के घोर दुःख से छूट गया.....और ये मुझे मेरा शान्त तत्त्व बता रहे हैं।

ऐसा विचार करके मैं विनय से सूँड नवाकर श्री मुनिराज के सन्मुख खड़ा रहा... लोगों का और मेरा – दोनों का महा उपद्रव शांत हुआ, मेरे आँखों से अश्रुधारा बहने लगी।

मुनिराज ने मेरी सूँड पर हाथ रखकर प्रेम से कहा –

"वत्स ! तू शांत हो ! मैं अरविंद राजा मुनि हुआ हूँ और तू इससे पहले के भव में मेरे मंत्री का पुत्र (मरुभूति) था.... उसे याद कर !

यह सुनते ही मुझे मेरे पूर्वभव की याद आयी, जातिस्मरण हुआ वैराग्य से मेरे परिणाम विशुद्ध होने लगे....।

श्री मुनिराज ने कहा – "हे भव्य ! पूर्वभव में तुम्हारे सगे भाई ने ही तुझे मारा था.... ऐसे संसार से अपने चित्त को तू विरक्त कर.... क्रोधादि परिणामों को छोड़कर शांत चित्त से अपने आत्मतत्त्व का विचार कर.... तू कौन है ? तू हाथी नहीं, तू क्रोध नहीं, शरीर और क्रोध दोनों से भिन्न तू तो चेतनस्वरूप है...अरे ! अपने चैतन्यस्वरूप को तू समझ...।"

श्री मुनिराज की मधुर वाणी मेरी आत्मा को जागृत करने लगी.... मुनिराज की वीतरागी शांति को देखकर मैं मुग्ध हो गया, कितने निर्भय, कितने शांत ! कितने दयालु ! मेरे क्रोध की अशांति और मुनिराज की चेतना में रहनेवाली शांति इन दोनों के महान अन्तर का ज्ञान होते ही मेरा

उपयोग क्रोध को तज कर क्षमा की ओर जाने लगा.... क्रोधरूपी पागलपन कहीं दूर चला गया था।

श्री मुनिराज अपनी मधुर वाणी से मुझे संबोधित करते हुए कह रहे थे – "हे भव्य ! अब तुम्हारे भव दु:ख का अन्त नजदीक आ गया है, आत्मज्ञान करके अपूर्व कल्याण करने का अवसर आ गया है.... तुम अन्तःवृत्ति के द्वारा चैतन्यतत्त्व को देखो...... उसकी अद्‌भुत सुन्दरता को देखकर तुम्हें अपूर्व आनंद होगा....।
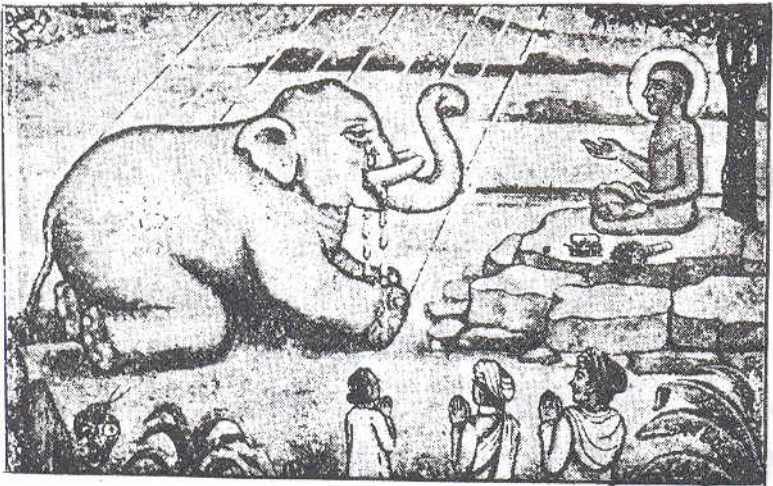
और अब सुनो ! अतिशय हर्ष की बात यह है कि इस भव में ही सम्यक्त्व प्राप्त कर, आत्म की आराधना में आगे बढ़ते-बढ़ते आठवें भव में तुम भरतक्षेत्र की चौबीसी में तेईसवें त्रिलोकपूज्य तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ होओगे..... अब तुम्हारे मात्र सात भव शेष हैं...... और वे भी सब भव आत्मा की आराधना से सहित हैं.....।"

श्री मुनिराज से अपने भव के अन्त की बात सुनकर मुझे अपार प्रसन्नता हुई.... और तभी से अन्तरंग में चैतन्यतत्त्व के परम-आनंद का स्वाद चखने के लिए बारम्बार मेरा मन करने लगा। "ऐसे वीतरागी संत का मुझे समागम मिला है"– इसलिए मुझे इसीसमय कषाय से भिन्न शांत

चैतन्यरस की अनुभूति करना चाहिये... ऐसे शांत परिणाम के द्वारा मेरी चेतना अन्तर में उतर गई..... मैंने अपने परमात्मस्वरूप के साक्षात् (प्रत्यक्ष) दर्शन किये..... मुझे परम-आनंदमय स्वानुभूति सहित सम्यक्त्व प्राप्त हुआ।

अहा, मुनि भगवंत के एक क्षणमात्र के सत्संग ने मुझे मेरे परमात्मा से मिलाया। मेरा अक्षय चैतन्य निधान मुझे प्राप्त हुआ.....। भव-दुःख का अंत और् मोक्ष की साधना का प्रारंभ हुआ। मुनिराज के उपकार की क्या बात ! भाषा के शब्द तो मेरे पास नहीं थे तो भी मन ही मन मैंने उनकी स्तुति की, शरीर की चेष्टा के द्वारा वंदना करके भक्ति व्यक्त की....। प्रभो ! इस पामर जीव को आपने पशुता से छुड़ा दिया .... हाथी का यह भारी शरीर मैं नहीं, मैं तो चैतन्य परमात्मा हूँ, पल-पल में अन्तर्मुख परिणाम से आनंदमय अमृत की नदी मेरे अन्तर में उछल रही थी...। आत्मा अपने एकत्व में रमने लगा.... चैतन्य की गंभीर शांति में ठहरते हुए इस भव से पार उतर गया,... कषायों की अशान्ति से आत्मा छूट गया... मैं अपने में ही तृप्त-तृप्त हो गया।

सम्यग्दृष्टि हुआ हाथी कहता है – "मेरी ऐसी दशा देखकर संघ के मनुष्यों को भी बहुत आश्चर्य हुआ। यह कैसा चमत्कार ! कहाँ एक क्षण पहले का पागल हाथी ! और कहाँ यह वैराग्य भाव से शान्तरस में सराबोर हाथी !"

मुनिश्री ने उन्हें समझाते हुए कहा –

"हे जीवो ! यह हाथी एकाएक शान्त हो गया – यह कोई चमत्कार नहीं, यह तो चैतन्यतत्त्व की साधना का प्रताप है। ..... अथवा इसे चैतन्य का चमत्कार कहो..... कषाय आत्मा का स्वभाव नहीं है, आत्मा का स्वभाव तो शान्त-चैतन्यस्वरूप है – उसे लक्ष्य में लेते ही आत्मा क्रोध से भिन्न अपने अतीन्द्रिय चैतन्य सुख का अनुभव करता है।

यह हाथी इस समय ऐसे परम चैतन्य सुख का अनुभव कर रहा है। अब आत्मज्ञान प्राप्त कर मोक्षमार्ग में प्रवेश पा गया है...... इसका जीवन धन्य हो गया है...... यह धर्मात्मा है.... और भावी तीर्थंकर है।

लोगों को अपार प्रसन्नता हुई..... चारों ओर आश्चर्य और हर्ष का वातावरण बन गया। अनेक जीवों ने मुनिराजश्री की बात सुनकर और मेरी शान्तदशा देखकर चैतन्य की महिमा को समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया।

मैं शांत दृष्टि से मनुष्यों को देखकर क्षमा माँग रहा था और मन ही मन यह विचार कर कि "यह मुनिराज का उपकार है, इनके ही सत्संग का प्रताप है....., मेरा मन इनके प्रति कृतज्ञता से भर उठा।"

मुनिराज ने प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद दिया।

बंधुओ ! यह हाथी कोई और नहीं अपने भगवान पारसनाथ का ही जीव है, पहले सिंह की फिर इस हाथी की कहानी सुनकर सत्समागम की महिमा का विचार करना। हाथी तिर्यंच-प्राणी, मुनिराज के क्षणभर के समागम से क्रोध शांत करके आत्मतत्त्व के परमार्थ स्वरूप को समझकर पशुपर्याय से भी परमात्मा बन जाता है। उस सत्समागम की कितनी महिमा ! जीवन में आत्महित करने के लिए सत्समागम (सत्संग) जैसा साधन कोई दूसरा नहीं है। कभी महाभाग्य से क्षणभर के लिए भी धर्मात्मा के सत्संग का सुयोग बन जावे तो प्रमाद (आलस) नहीं करना। सत्संग का महान लाभ लेकर आत्मकल्याण कर लेना।

फिर, उस हाथी का क्या हुआ ? अब यह सुनो –

फिर, आत्मज्ञान प्राप्त हो जाने से उस हाथी को अतिशय वैराग्य हुआ.... तथा मुनिराज के समक्ष उसने श्रावकधर्म के पाँच अणुव्रत धारण किये।

एकबार वह हाथी कहीं पर कीचड़ में फँस गया, वहाँ उसके पूर्वभव का भाई (वैरी) कमठ मरकर सर्प हुआ था, उस सर्प ने हाथी को डस लिया, सम्यक्त्व सहित समाधिमरण करके वह हाथी तो स्वर्ग में देव हुआ और सर्प का जीव नरक में गया।
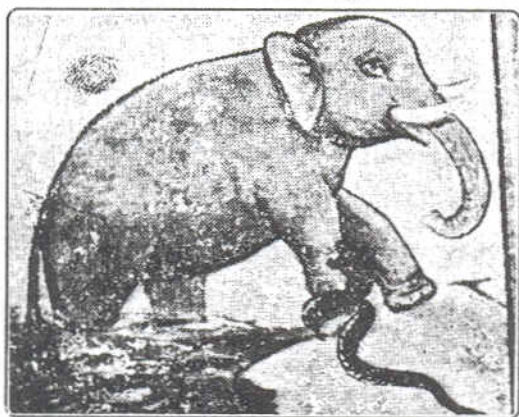
अगले भव में हाथी का जीव मनुष्य होकर मुनिदशा में ध्यान में बैठा था, वहाँ अजगर हुए कमठ के जीव ने उसे डस लिया। फिर से वह स्वर्ग में गया और अजगर नरक में।

इसके बाद के भव में हाथी का जीव वज्रनाभि-चक्रवर्ती हुआ, वे मुनि होकर ध्यान में बैठे थे, वहाँ शिकारी भील हुए कमठ के जीव ने बाण से उन्हें वेध डाला। पुनः वह स्वर्ग में गया, भील नरक में।

उसके बाद के भव में हाथी का जीव अयोध्या नगरी में आनंदकुमार नाम का महाराज हुआ। वहाँ वैराग्य पूर्वक मुनि होकर सोलह कारण भावना के द्वारा उसने तीर्थंकर प्रकृति बाँधी। आनंद मुनिराज आत्मध्यान में बैठे थे, इसीसमय सिंह हुए कमठ के जीव ने उन्हें खा लिया ..... वे मुनिराज स्वर्ग के देव हुए और कमठ का जीव नरकादि में भ्रमण करते-करते 'संगम' नाम का देव हुआ।

अंतिम भव में उस हाथी के जीव ने वाराणसी (काशी) नगर में पारसनाथ तीर्थंकर के रूप में अवतार लिया... दीक्षा लेकर मुनि होकर

वे आत्मध्यान में मग्न थे, उस समय संगम देव ने उपद्रव किया, लेकिन पारस मुनिराज तो आत्मसाधना में अडिग रहकर केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर परमात्मा हुए.... इन्द्रों ने आकर आश्चर्यकारी महोत्सव मनाया। प्रभु की चरम महिमा को देखकर, कमठ के जीव उस संगम देव को अपनी भूल (अज्ञानता) का भान हुआ, क्षमा माँगकर भक्तिपूर्वक प्रभु का उपदेश सुनकर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया।

पारस के साथ लोहा भी सोना बन गया। धन्य है सत्संग की महिमा ! जिसके प्रताप से हाथी का जीव मोक्षमार्गी बन गया। ●

क्या आप जानते हैं ?

दो मनुष्य पास-पास बैठे हैं। दोनों के अंदर कोई विचार चल रहा है। एक ने क्या विचार किया – यह दूसरा उसे छूकर (स्पर्श करके) भी नहीं जान सकता।

दूसरे ने क्या विचार किया– इसे पहला, दूसरे को छूकर भी नहीं जान सकता। परंतु वे दोनों अपने-अपने अंदर विचारों को तो स्पष्ट जानते हैं। स्पर्श के द्वारा या आँख के द्वारा न दिखे– ऐसे अपने अरूपी विचारों का अस्तित्व जीव स्वयं स्पष्ट जान सकता है।

ऐसे अरूपी विचार जिसकी भूमिका में होते हैं और जो उन्हें जानता है, वह स्वयं अरूपी चैतन्य आत्मा है।

हमें भी इस सम्यग्ज्ञानी बालक की तरह चैतन्य स्वरूपी आत्मा और शरीर का भेदज्ञान करना चाहिये। ''चैतन्य स्वरूपी आत्मा'' यह मैं हूँ तथा ''जड़ शरीर'' वह मैं नहीं हूँ। – इसप्रकार यथार्थ निर्णय करना चाहिये। ●

बोले.....तो क्या बोले ?

भरत चक्रवर्ती के कितने ही राजकुमार जन्म से ही गूँगे थे..... बोलते नहीं थे....फिर जब पहली ही बार बोले.... तब क्या बोले ? – यह जानने के लिए पढिये यह कहानी....

भरत चक्रवर्ती सहित अनेक रानियाँ भी चिन्तित हैं, क्योंकि उनके अनेक राजकुमार कुछ बोलते ही नहीं, लगता है जन्म से ही गूँगे हैं। अनेक वर्ष बीत गये, एक शब्द भी उनके मुख से अभी तक निकला नहीं था, राजकुमारों पर बोलने के लिए अनेक युक्ति और उपाय किये गये, परन्तु वे नहीं बोले।

अरे, चक्रवर्ती के रूपवान राजकुमार क्या जिंदगी भर ही गूँगे रहेंगे ? क्या वे बिल्कुल ही नहीं बोलेंगे ? – इसकी चिंता से सभी हमेशा चिन्तित रहते थे।

इसीसमय भगवान ऋषभदेव समवशरण सहित अयोध्यापुरी में पधारे.... राजा भरत उनके दर्शन करने के लिए गये..... साथ में इन गूँगे राजकुमारों को भी ले गये। भरत ने भगवान के दर्शन किये। राजकुमारों ने भी भक्तिभाव से अपने दादा तीर्थंकर ऋषभदेव के दर्शन किये, परन्तु अभी तक भी वे बोले नहीं।

आखिर भरत चक्रवर्ती ने पूछा – "हे प्रभो ! महापुण्यशाली राजकुमार कुछ भी नहीं बोलते ? क्या वे गूँगे हैं ?"

उस समय भगवान की वाणी में आया – "हे भरत ! ये राजकुमार गूँगे नहीं हैं, जन्म से ही वैराग्यचित्त के कारण वे कुछ भी नहीं बोलते। लेकिन अब वे बोलेंगे।"

भरत ने कहा – "हे पुत्रो ! तुम गूँगे नहीं हो" – यह जानकर हमें अपार प्रसन्नता हुई है..... और अब क्या बोलते हो ? उसे सुनने के लिए हम उत्सुक हैं।

वे वैरागी राजपुत्र एक साथ खड़े हुए और भगवान के सम्मुख परम विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कुछ इसप्रकार बोले, मानो चैतन्य की गुफा में से वैराग्य की मधुर वीणा बज रही हो –

"हे प्रभो ! हमें मोक्ष के कारणरूप ऐसी मुनिदीक्षा चाहिये। हमारा चित्त इस संसार से उदास है, इस संसार के संयोग में या परभाव में कहीं भी हमें शान्ति नहीं मिली, हमें अपने निजस्वभाव के मोक्षसुख का अनुभव करवा दीजिए, जिससे हम केवलज्ञान प्रकट करके भव-बन्धन से छूट जावें।"

राजकुमार आज जीवन में पहली बार ही बोले। वाह ! पहली ही बार बोले ......और ऐसे उत्तम वचन बोले ?

भरत चक्रवर्ती और सभाजन भी राजकुमारों के शब्दों को सुनते ही स्तब्ध रह गये, लाखों-करोड़ों देवों ने और मनुष्यों ने उनके वैराग्य की प्रशंसा की।..... तिर्यंचों के समूह भी इन वैरागी राजकुमारों को आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे।

राजकुमार तो अपने वैराग्य भाव में मग्न हैं। प्रभु के सन्मुख आज्ञा लेकर वे वस्त्र-मुकुट आदि परिग्रह छोड़कर मुनि हुए..... वचन-विकल्प छोड़कर शुद्धोपयोग के द्वारा निजानंद स्वरूप में लीन होकर वचनातीत आनंद का अनुभव करने लगे।.....

पाठको ! इन राजकुमारों का उत्तम जीवन हमें यह शिक्षा देता है कि हे जीव ! ऐसे ही वचन तू बोल, जिसमें तुम्हारा आत्महित का प्रयोजन हो.... संसार के निष्प्रयोजन कोलाहल में मत पड़....। ●

सब विपत्तियों का मूल अज्ञान है। पढ़ा-लिखा अज्ञानी, अनपढ़ अज्ञानी से अधिक भयंकर होता है। अज्ञान का आभास होना ही अज्ञान के नाश की विधि है।

अहिंसा धर्म की कहानी

(राजा श्रेणिक, रानी चेलना तथा अभयकुमार का पूर्वभव)

एक बार राजा श्रेणिक की राजधानी राजगृही में तीर्थंकर परमात्मा महावीर प्रभु पधारे। उनके समवशरण में आये राजा श्रेणिक ने प्रभु का उपदेश सुनकर गौतम स्वामी से पूछा –

''हे देव ! मेरे पूर्वभव की कथा कहिये।''

गौतम स्वामी ने अपने दिव्यज्ञान के द्वारा जानकर कहा –

''हे श्रेणिक ! सुनो ! दो भव पूर्व में तुम भीलराजा थे, उस समय तुमने माँस-त्याग की एक प्रतिज्ञा ली थी, उसके फल में तुम स्वर्ग में देव हुये, फिर यहाँ के राजा हुये हो।

पूर्वभव में तुम विंध्याचल में ''वादिरसार' नाम के भील थे, वहाँ तुम शिकार करते और माँस खाते थे। एकबार महाभाग्य से तुम्हें जैन मुनिराज के दर्शन हुए।''

मुनिराज ने कहा – ''माँसाहार महापाप है, उसे तू छोड़ दे।''

तुमने भद्रभाव से कहा – ''प्रभो! माँस का तो हमारा धन्धा है, उसे मैं सर्वथा नहीं छोड़ सकता। फिर भी

हे स्वामी ! आपके बहुमानपूर्वक मैं कोए के माँस को छोड़ता हूँ। भले ही प्राणान्त क्यों न हो जाये, पर मैं कौए का माँस कभी नहीं खाऊँगा।'' श्री मुनिराज ने उसे भव्य जानकर यह प्रतिज्ञा दे दी।

हे श्रेणिक ! उसके बाद कुछ ही

समय में ऐसी घटना घटी कि उसी वादिरसार भील को कोई महा भयंकर विचित्र रोग हुआ, औषधि द्वारा अनेक उपाय करने पर भी वह रोग दूर न हुआ।

"औषधि के रूप में यदि कौए का माँस खाओगे, तो रोग मिट जायेगा।" – ऐसा एक मूर्ख वैद्य ने कहा, लेकिन वादिरसार भील अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ था।

उसने कहा– "मरण हो तो भले ही हो जावे, परन्तु मैं कोए का माँस कभी नहीं खाऊँगा।"

वादिरसार के एक मित्र अभयकुमार के जीव ने यह बात सुनी और वह उसे समझाने के लिए वादिरसार के पास आ रहा था। इसीसमय रास्ते में उसने एक यक्षदेवी को उदासचित्त बैठे देखा। तब उस मित्र ने उसकी उदासी का कारण पूछा ?

यक्षदेवी (रानी चेलना के जीव) ने कहा – "हे भाई ! तुम अपने मित्र वादिरसार के पास जा रहे हो, उसे कौए के माँस का त्याग है; लेकिन यदि तुम जाकर उसे दवा के रूप में कौए का माँस खाने के लिए कहोगे और कदाचित् वह प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होकर मरण से बचने के लिए कौए का माँस खावेगा तो मरकर नरक में जावेगा, अत: उसकी दशा का विचार करके मैं दु:खी हूँ।"

उससमय उसे आश्वासन देकर, वह कुशल मित्र वादिरसार भील के पास आया और उसकी परीक्षा लेने के लिए कहा –

"कौए का माँस खाओगे तो तुम्हारा रोग मिट जावेगा। दूसरी कोई दवा उपयोगी नहीं है।" जब वह नहीं माना, तब उसने और भी दृढ़ता के साथ कहा – "भाई ! हठ छोड़ दो, व्यर्थ ही मरण हो जायेगा। एक बार औषधि के रूप में कौए का माँस खा लो, अच्छे हो जाने पर फिर व्रत ले लेना।"

तब भील ने मित्र को समझाते हुए कहा – "मैंने अपने जीवन में कोई सत्कार्य नहीं किया, जैसे-तैसे एक छोटा व्रत लिया है और मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूँ कि उसे भी छोड़ दूँ। जिसे धर्म से किंचित् भी स्नेह होगा, वह मरण अवस्था में भी व्रत को नहीं छोड़ेगा।"

इसप्रकार वह अपनी प्रतिज्ञा में दृढ रहा। उसकी दृढ़ता देखकर उसका मित्र प्रसन्न हुआ और रास्ते में यक्षदेवी के साथ हुई सब बात उसने वादिरसार को बताई कि तुम्हारी इस प्रतिज्ञा के कारण तुम देव होगे।

उससमय मात्र कौए का माँस छोड़ने का भी ऐसा महान फल जानकर, हे श्रेणिक ! उस भील राजा को उन जैन मुनिराज के ऊपर श्रद्धा हो गयी और अहिंसा धर्म का उत्साह बढ़ा, जिससे जैनधर्म के स्वीकार पूर्वक उसने माँसादि का सर्वथा त्याग करके अहिंसादि पाँच अणुव्रत धारण किये और पंचपरमेष्ठी की भक्तिपूर्वक शांति से प्राण त्याग कर, व्रत के प्रभाव से उसका आत्मा सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ।"

गौतमस्वामी आगे कहते हैं – "हे श्रेणिक ! वह भील तुम ही हो – फिर उस देवपर्याय से च्युत होकर तुम इस राजगृही में श्रेणिक राजा हुए हो और एक भव के बाद तुम तीर्थंकर होगे।"

भील के व्रतों का ऐसा उत्तम फल देखकर वहाँ उसके मित्र ने भी अणुव्रत धारण किये, वह मित्र भी वहाँ से मरकर ब्राह्मण का अवतार लेकर अर्हत्‌दास सेठ होकर जैन संस्कार प्राप्त करके स्वर्ग गया, और वहाँ से मरकर वह तुम्हारा पुत्र अभयकुमार हुआ है, वह तो इसी भव में जैनमुनि होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

श्रेणिक ने पूछा – "हे स्वामी ! फिर उस यक्षदेवी का क्या हुआ ?"

गौतमस्वामी ने कहा – "हे राजन् ! वह यक्षदेवी उसके बाद

कितने ही भव धारण करके अनुक्रम से वैशाली के चेटक राजा की पुत्री चेलना हुई, जो अभी तुम्हारी पटरानी है।''

अपने पूर्वभव की बात सुनकर राजा श्रेणिक को यथार्थ बोध हुआ, तीर्थंकर प्रभु के समीप विशेष आत्मशुद्धि पूर्वक क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट किया। इतना ही नहीं, धर्म की उत्तम भावना के द्वारा उन्हें तीर्थंकर नाम कर्म बँधना भी शुरू हुआ और भगवान महावीर के ८४००० वर्ष बाद वे इस भरत-क्षेत्र में महापद्म नामक प्रथम तीर्थंकर होंगे।

अरे भव्यजीवो ! जिस वीतरागता और अहिंसा का उपदेश जैनधर्म देता है, उसका थोड़ा-सा पालन करने से ही जब ऐसा महान फल प्राप्त होता है, तो सम्पूर्ण वीतराग भावरूप अहिंसा का फल कितना महान होगा, उसे समझना चाहिये। अत: हे बंधुओ, शूरवीर होकर वीर भगवान के अहिंसा धर्म का पालन करना, उसे पालन करने में कायर मत होना। मद्य, माँस और अण्डे के खाने में भी पंच-इन्द्रिय जीव का घात है। ऐसे खाने-पीनेवाले होटल वगैरह में भी जिज्ञासु सज्जनों को कभी नहीं जाना चाहिए। अत: जैनधर्म की वीतरागता के उत्तम संस्कार आत्मा में विकसित करना चाहिये, जिससे राजा श्रेणिक के समान हमारा भी महान कल्याण होवे।

अहो ! यह है विचित्र संसार के बीच भी अलिप्त ज्ञानचेतना राजा श्रेणिक की।

श्री गौतम गणधर के श्रीमुख से अपने भूतकाल के भवों का वर्णन सुनकर, श्रेणिक राजा वैराग्यपूर्वक अपने भविष्य के भवों के बारे में भी उनसे पूछते हैं। तब गौतमस्वामी कहते हैं –

''हे श्रेणिक ! पहले अज्ञानदशा में मिथ्यात्वादि पापों के सेवन से और जैनमुनि के ऊपर उपसर्ग करने से जो पाप तुमने बाँधे थे, उससे तुम पहले नरक में जाओगे; लेकिन वहाँ भी क्षायिक सम्यक्त्व होने से तुम

कभी भी अपने आत्मा को विस्मृत नहीं करोगे और सोलह कारण भावना भाते हुए दूसरे भव में तुम इस भरतक्षेत्र में महापद्म नामक त्रिलोकपूज्य प्रथम तीर्थंकर होकर मोक्ष प्राप्त करोगे।"

"अहो, एक ही जीव, एक ही भव में एक बार में नरक के कर्म बाँधता है, और फिर उस ही भव में तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का कर्म बँधता है, देखो तो जरा जीव की परिणति की विचित्रता।"

इस प्रकार क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक ने अपने बारे में एक साथ दो बातें सुनी – १. आगामी भव में नरक जाना और २. उसके बाद के भव में तीर्थंकर बनना । 'नरक में जाना और तीर्थंकर होना' – दोनों बातें एक साथ सुनकर उसे कैसा लग रहा होगा ? खुशी हुई होगी ? या खेद हुआ होगा ? कहाँ हजारों वर्ष तक नरक के घोरातिघोर अत्यंत दुःख की वेदना ! और कहाँ त्रिलोकपूज्य तीर्थंकर पदवी !

अहो ! कैसा विचित्र संयोग है। एक ओर नरक गति का खेद और दूसरी ओर तीर्थंकर पदवी का हर्ष। लेकिन हे भव्यजीवो ! तुम श्रेणिक में ऐसा हर्ष या खेद ही नहीं देखना । इन दोनों के अलावा एक तीसरी अत्यंत सुंदर वस्तु उस ही समय श्रेणिक राजा में वर्त रही है, उसे तुम देखना, तब ही तुम धर्मात्मा श्रेणिक को समझोगे, वरना तुम श्रेणिक के प्रति अन्याय करोगे।

क्या है यह तीसरी वस्तु ! यह है ज्ञानचेतना हर्ष-शोक दोनों से सर्वथा अलिप्त, परम शान्त वर्त रही है। यह ज्ञानचेतना ना तो नरक के कर्मों को वेदती है, और ना ही तीर्थंकर प्रकृति के कर्म को वेदती है – दोनों कर्मों से भिन्न नैष्कर्म्य भाव से कर्मों से छूट कर परम शांति से मोक्षपंथ को साध रही है। यह है श्रेणिक का सच्चा स्वरूप ! उसे समझना चाहिये। तभी श्रेणिक की नरक दशा या तीर्थंकर दशा – दोनों को सुनकर तुम भी राग-द्वेष से भिन्न शांत-ज्ञानचेतना रूप में रह सकोगे और मोक्षपंथ की साधना कर सकोगे।

हर्ष-खेद से पार है, सुन्दर ज्ञान स्वभाव।
उस स्वभाव को साधकर, मोक्षदशा प्रगटाव ॥

चाहे कितना चतुर कारीगर हो तथापि वह दो घड़ी में मकान तैयार नहीं कर सकता, किन्तु यदि आत्मस्वरूप की पहिचान करना चाहे तो वह दो घड़ी में भी हो सकती है।

आठ वर्ष का बालक अनेक मन का बोझ नहीं उठा सकता, किन्तु यथार्थ समझ के द्वारा आत्मा की प्रतीति करके केवलज्ञान को प्राप्त कर सकता है।

आत्मा पर द्रव्य में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता, किन्तु स्व-द्रव्य में पुरुषार्थ के द्वारा समस्त अज्ञान का नाश करके, सम्यक्ज्ञान को प्रगट करके केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है।

स्व परिणमन में आत्मा सम्पूर्ण स्वतन्त्र है, किन्तु पर में कुछ भी करने के लिए आत्मा में किंचित्मात्र सामर्थ्य नहीं है।

आत्मा में इतना अपार स्वाधीन पुरुषार्थ विद्यमान है कि यदि वह उल्टा चले तो दो घड़ी में सातवें नरक जा सकता है और यदि सीधा चले तो दो घड़ी में केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध हो सकता है।

– वस्तु विज्ञान सार से साभार

वनवासी अंजना

(वन-गुफा में मुनिदर्शन का महान आनंद)

(संसार के अत्यंत दुःख प्रसंग में जब ऊपर आकाश और नीचे पाताल – जैसी परिस्थिति हो, तब भी जीव को धर्म और धर्मात्मा कितने अचिंत्य शरणरूप होते हैं – उसकी महिमा बताने वाला सती अंजना के जीवन का एक प्रेरक प्रसंग)

बाईस वर्ष तक पति पवनंजय से बिछुड़ी हुई सती अंजना को, जिस समय सासु केतुमती ने कलंकनी समझकर क्रूरतापूर्वक राज्य से निकाल दिया और जिससमय पिता गृह में भी उसे आश्रय नहीं मिला, किसी ने भी से शरण नहीं दी, उस समय पूरे संसार से उदास हुई वह सती अपनी एक सखी के साथ वन की ओर चली गई।

चलो सखी वहाँ चलें.......जहाँ मुनियों का वास हो।

अंजना कहती है – "हे सखी ! इस संसार में अपना कोई नहीं है। श्री देव-गुरु-धर्म ही अपने सच्चे माता-पिता हैं। उनका ही सदा शरण है।"

वाघ से भयभीत हिरणी के समान अंजना अपनी सखी के साथ वन में जा रही है........वनवासी मुनिराजों को याद करती जा रही है, और चलते-चलते जब थक जाती है, तब बैठ जाती है। उसका दुःख देखकर सखी विचार करती है –

"हाय ! पूर्व के किस पाप के कारण यह राजपुत्री निर्दोष और गर्भवती होने पर भी महान कष्ट पा रही है। संसार में कौन रक्षा करे ? पति के घर जिसका अनादर हुआ.........जो पिता उसे प्यार पूर्वक खिलाते थे, उन पिता के द्वारा भी जिसका अनादर हुआ....... इसकी माता भी इसे सहारा न दे सकी। सहोदर भाई भी ऐसे दुःख में कोई सहारा न दे सका। राजमहल में रहनेवाली अंजना इस समय घोर वन में भटक रही है।

अरे, दुर्भाग्य की इस घड़ी में एकमात्र धर्म ही इस शीलवती को शरण है। जब पूर्व कर्म का उदय ही ऐसा हो, तब धैर्यपूर्वक धर्म सेवन ही शरणभूत है, दूसरा कोई शरण नहीं।" उदास अंजना वन में अत्यंत विलाप कर रही है, साथ ही अंजना की सखी भी रो रही है। निर्जन वन में अंजना और उसकी सखी का विलाप इतना करुण था कि उन्हें देखकर आस-पास में रहनेवाली हिरणियाँ भी उदास हो गईं।

बहुत देर तक उनका रुदन चलता रहा....अन्त में विलक्षण चित्तवाली सखी ने धैर्यपूर्वक अंजना को हृदय से लगाकर कहा –

"हे सखी ! शांत हो.......रुदन छोड़ो ! अधिक रोने से क्या ? तुम जानती हो कि इस संसार में जीव को कोई शरण नहीं, यहाँ तो सर्वज्ञ देव, निर्ग्रंथ वीतरागी गुरु और उनके द्वारा कहा गया धर्म – यह ही सच्चे माता-पिता और बाँधव हैं और ये ही शरणभूत हैं, तुम्हारा आत्मा ही तुम्हें शरणभूत है, वह ही सच्चा रक्षक है, और इस असार-संसार में अन्य कोई शरणभूत नहीं है। इसलिए हे सखी ! ऐसे धर्म-चिंतन के द्वारा तू चित्त को स्थिर कर....... और प्रसन्न हो।

हे सखी ! इस संसार में पूर्व कर्म के अनुसार संयोग-वियोग होता ही है, उसमें हर्ष-शोक क्या करना ? जीव सोचता कुछ है और होता कुछ है। संयोग-वियोग इसके आधीन नहीं है......यह तो सब कर्म की विचित्रता है। इसलिए हे सखी ! तू व्यर्थ ही दुःखी न हो, दुःख छोड़कर धैर्य से अपने मन को वैराग्य में दृढ़ कर।"

– ऐसा कहकर स्नेहपूर्वक सखी ने अंजना के आँसू पोंछे। सती अंजना का चित्त शांत हुआ और वह भावना भाने लगी –

कर्मोदय के विविध फल, जिनदेव ने जो वर्णये।
वे मुझ स्वभाव से भिन्न हैं, मैं एक ज्ञायक भाव हूँ॥

सखी ने अंजना के हितार्थ आगे कहा – "हे देवी ! चलो, इस

वन में जहाँ हिंसक प्राणियों का भय न हो – ऐसा स्थान देखकर, किसी गुफा को साफ करके वहाँ रहेंगे, यहाँ सिंह, वाघ और सर्पों का डर है।"

सखी के साथ अंजना जैसे-तैसे चलती है, साधर्मी के स्नेह-बंधन से बँधी हुई सखी उसकी छाया की तरह उसके साथ ही रहती है। अंजना भयानक वन में भय से डर रही थी, उस समय उसका हाथ पकड़कर सखी कहती है – "अरे मेरी बहिन ! तू डर मत........मेरे साथ चल........"

सखी का मजबूती से हाथ पकड़कर अंजना चलने लगी। थोड़ी दूर पर एक गुफा दिखाई दी।

सखी ने कहा – "वहाँ चलते हैं।"

लेकिन अंजना ने कहा – "हे सखी ! अब मेरे में तो एक कदम भी चलने की हिम्मत नहीं रही....... अब तो मैं थक गई हूँ।"

सखी ने अत्यंत प्रेमपूर्वक शब्दों से उसे धैर्य बँधाया और स्नेह से उसका हाथ पकड़कर गुफा के द्वार तक ले गई। दोनों सखी अत्यंत थकी हुई थीं। बिना विचारे ही गुफा के अन्दर जाने में खतरा है – ऐसा विचार करके थोड़ी देर बाहर ही बैठ गयीं, लेकिन जब दोनों ने गुफा में देखा......गुफा का दृश्य देखते ही दोनों सखी आनन्दाविभूत होकर आश्चर्यचकित हो गईं।

– ऐसा क्या देखा था उन्होंने ?

अहो ! उन्होंने देखा कि गुफा के अन्दर एक वीतरागी मुनिराज ध्यान में विराजमान हैं। चारणऋद्धि के धारक इन मुनिराज का शरीर निश्चल है, मुद्रा परमशांत और समुद्र के समान गंभीर है, आँखें अन्तर में झुकी हुई हैं, आत्मा का जैसा यथार्थ स्वरूप जिन-शासन में कहा है – वैसा ही उनके ध्यान में आ रहा है। पर्वत जैसे अडोल हैं।

आकाश जैसे निर्मल हैं और पवन जैसे असंगी हैं, अप्रमत्तभाव में झूल रहे हैं और सिद्ध के समान आत्मिक-आनंद का अनुभव कर रहे हैं।

गुफा में एकाएक ऐसे मुनिराज को देखते ही दोनों की खुशी का पार नहीं रहा। "अहो ! धन्य मुनिराज !" – ऐसा कहती हुई हर्षपूर्वक वे दोनों सखी मुनिराज के पास गईं। मुनिराज की वीतरागी मुद्रा देखते ही वे जीवन के सर्व दु:खों को भूल गयीं। भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। ऐसे वन में मुनि जैसे परम बाँधव मिलते ही खुशी के आँसू निकलने लगे...... और नजर मुनिराज के चरणों में रुक गयी। तब वे हाथ जोड़कर गद्‌गद् भाव से मुनिराज की स्तुति करने लगीं।

"हे भगवान ! हे कल्याणरूप ! आप संसार को छोड़कर आत्महित की साधना कर रहे हो......जगत के जीवों के भी आप परम हितैषी हो।......अहो, आपके दर्शन से हमारा जीवन सफल हुआ......आप महा क्षमावंत हो, परम शांति के धारक हो, आपका विहार जीवों के कल्याण का कारण है।"

ऐसी विनयपूर्वक स्तुति करके, मुनि के दर्शन से उनका सारा भय दूर हो गया.....और उनका चित्त अत्यंत प्रसन्न हुआ।

ध्यान टूटने पर मुनिराज ने परमशांत अमृतमयी वचनों से धर्म की महिमा बताकर उनको धर्मसाधना में उत्साहित किया और अवधि-ज्ञान से मुनिराज ने 'अंजना के उदर में स्थित चरमशरीरी हनुमान के वृत्तान्त सहित पूर्वभव में अंजना द्वारा जिन-प्रतिमा का अनादर करने से इस समय अंजना के ऊपर यह कलंक लगा है'– यह बताते हुए कहा –

"हे पुत्री ! तू भक्ति पूर्वक भगवान जिनेन्द्र और जैनधर्म की आराधना कर.......इस पृथ्वी पर जो सुख है, वह उसके ही प्रताप से तुझे मिलेगा। अत: हे भव्यात्मा ! अपने चित्त में से खेद (दु:ख) छोड़कर प्रमाद रहित होकर धर्मकार्य में मन लगा।"

अहा ! अंजना को मुनिराज के दर्शन से जो प्रसन्नता हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ? आनंद से उसकी नेत्र-पलक झपकना भूल गये...। अहो, इस घनघोर वन में हमें धर्मपिता मिले, आपके दर्शन से हमारा दुःख दूर हो गया, आपके वचनों से हमें धर्मामृत मिल गया...आप परम शरणरूप हो – ऐसा कहकर बारम्बार नमस्कार करने लगीं।

निस्पृही मुनिराज तो उसे धर्म का उपदेश देकर आकाशमार्ग से विहार कर गये। मुनिराज के ध्यान द्वारा पवित्र हुई इस गुफा को तीर्थ समान समझकर, दोनों सखी धर्म में सावधान होकर वहाँ रहने लगीं। कभी वे जिनभक्ति करतीं और कभी मुनिराज को याद करके वैराग्य से शुद्धात्मतत्त्व की भावना भातीं......।

इसप्रकार धर्म की साधनापूर्वक समय निकल गया और योग्य काल में (चैत सुदी पूर्णिमा) के दिन अंजना ने एक मोक्षगामी पुत्ररत्न को जन्म दिया...... जो आगे चलकर वीर हनुमान के नाम से विख्यात हुआ।

(वे हनुमान आत्मज्ञानी धर्मात्मा थे.....उनके जीवन के आनंदकारी प्रसंग को अगली कहानी में पढ़िये।) ●

होकर सुख में मग्न न फूले, दुःख में कभी न घबराये।
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहीं भय खावे॥

आत्मज्ञानी वीर हनुमान

(अंजना-माता के साथ पुत्र-हनुमान की चर्चा)

वन में मुनिराज के दर्शन से अंजना को परम हर्ष हुआ था, उसके कितने ही समय बाद अंजना सती ने वन की गुफा में पुत्र हनुमान को जन्म दिया..... चरमशरीरी – मोक्षगामी पुत्र के जन्म से वन के वृक्ष भी हर्ष से खिल उठे और हिरन-मोर आदि पशु-पक्षी भी आनंद से नाच उठे। पाठकगण ! आपने भी आनंद मनाया होगा, क्योंकि जैसे महावीर हमारे भगवान हैं, वैसे ही हनुमान भी हमारे भगवान हैं।

पश्चात् सती अंजना के मामा उस वन में आये और अंजना तथा हनुमान को अपनी नगरी में (नदी के बीच में 'हनुरुह' नामक द्वीप में) ले गये.....और वहीं सब आनंद से रहने लगे। देखो, महान पुण्यवान और आत्मज्ञानी ऐसा वह धर्मात्मा बालक 'हनु' आनंद से बड़ा हो रहा है। अंजना-माता अपने लाडले बालक को उत्तम संस्कार दे रही है, और बालक की महान चेष्टाओं को देखकर आनंदित हो रही है। ऐसे अद्भुत प्रतापी बालक को देखकर जीवन के सभी दु:खों को वह भूल गयी है और आनंद से जिनगुणों में चित्त लगाकर जिनभक्ति कर रही है, तथा हमेशा वनवास के समय गुफा में देखे उन मुनिराज को बारम्बार याद करती है।

बालक हनुमान भी रोज माता के साथ ही जिन-मंदिर जाता है, वह वहाँ देव-गुरु-शास्त्र की पूजा करना सीख रहा है और मुनियों के संघ को देखकर आनंदित होता है।

एक बार बालक हनुमान से माता अंजना पूछती है – "बेटा हनुमान ! तुम्हें क्या अच्छा लगता है ?"

हनुमान कहते हैं – "माँ, मुझे तो एक तुम अच्छी लगती हो और दूसरा आत्मा का सुख अच्छा लगता है।"

माँ कहती है – 'अरे बेटा ! मुनिराज ने कहा है कि तुम चरमशरीरी हो, इसलिए तुम तो इस भव में ही मोक्ष सुख प्राप्त करोगे और भगवान बनोगे।''

हनुमान कहते हैं – ''अहो, धन्य हैं वे मुनिराज ! धन्य हैं !! हे माता, जब मुझे तुम्हारे जैसी माता मिली, तब फिर मैं दूसरी माता का क्या करूँगा ? और तुम भी इस भव में आर्यिका व्रत धारण कर, अनन्त भवों का अन्त करके शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करना।''

अंजना कहती है – ''वाह बेटा ! तुम्हारी बात सत्य है ? सम्यक्त्व के प्रताप से अब फिर कभी यह निंद्य स्त्री पर्याय नहीं मिलेगी, अब तो संसार दु:खों का अंत नजदीक आ गया है। बेटा, तुम्हारा जन्म होने से लौकिक दु:ख टल गये और अब संसार-दु:ख भी जरूर दूर हो जावेगा।''

हनुमान कहते हैं – ''हे माता ! संसार का संयोग-वियोग कितना विचित्र है और जीवों के प्रीति-अप्रीति के परिणाम भी कितने चंचल और अस्थिर हैं। एक क्षण में जो वस्तु प्राणों से भी प्रिय लगती है, दूसरे क्षण में वही वस्तु उतनी ही अप्रिय हो जाती है और फिर बाद में वही वस्तु फिर से प्रिय लगने लगती है। इसप्रकार दूसरे के प्रति प्रीति-अप्रीति के क्षणभंगुर परिणामों के द्वारा जीव आकुल-व्याकुल होते हैं। मात्र चैतन्य

का सहज ज्ञानस्वभाव ही स्थिर और शांत है। वह प्रीति-अप्रीति से रहित है और ज्ञानस्वभाव की आराधना के अलावा अन्यत्र कहीं सुख नहीं है।''

अंजना कहती है – ''वाह बेटा ! तुम्हारी मधुर वाणी सुनकर प्रसन्नता होती है। जिनधर्म के प्रताप से हम भी ऐसी ही आराधना कर रहे हैं। जीवन में सबकुछ देखा, सुखमय आत्मा देखी, इसीप्रकार दुःखमय संसार को भी जान लिया। बेटा ! अब तो बस ! आनंद से मोक्ष की ही साधना करना है।''

इसप्रकार माँ-बेटा (अंजना और हनुमान) बहुत बार आनंद से चर्चा करते हैं, और एक-दूसरे के धर्म संस्कारों को पुष्ट करते हैं।

वहाँ हनुरुह द्वीप में हनुमान, विद्याधरों के राजा प्रतिसूर्य के साथ देव की तरह क्रीडा करते हैं और आनंदकारी चेष्टाओं के द्वारा सबको आनंदित करते हैं।

धीरे-धीरे हनुमान युवा हो गये, कामदेव होने से उनका रूप सोलह कलाओं से खिल उठा; भेदज्ञान की वीतरागी विद्या तो उनमें थी ही, पर आकाशगामिनी विद्या आदि अनेक पुण्य विद्यायें भी उनको सिद्ध हुईं। वे समस्त जिनशास्त्र के अभ्यास में निपुण हो गये; उनमें रत्नत्रय की परमप्रीति थी, देव-गुरु-शास्त्र की उपासना में वे सदा तत्पर रहते थे।●

तुम झूठे कहलाओगे

जिस वस्तु को तुमने देखा ही नहीं, फिर उसके ऊपर मुफ्त का झूठा आरोप क्यों लगाते हो ? यदि जीव को तुमने देखा होता तो वह तुम्हें चैतन्यस्वरूप ही दिखाई देता और वह जड़ की क्रिया का कर्त्ता है – ऐसा तू मानता ही नहीं, इसलिए तुम बिना देखे जीव के ऊपर अजीव के कर्तृत्व का मिथ्या आरोप मत लगाओ। यदि झूठा आरोप लगाओगे तो तुम्हें पाप लगेगा, तुम झूठे कहलाओगे।

हनुमान को परमात्मा के दर्शन

एक बार श्री अनंतवीर्य मुनिराज को केवलज्ञान हुआ। देवों और विद्याधरों के समूह आकाश में मंगल बाजे बजाते हुए केवलज्ञान का महान उत्सव मनाने गये। हनुमान भी आनंद से उस उत्सव में गये और भगवान के दर्शन किये। अहा ! दिव्य धर्मसभा के बीच निरालम्बी विराजमान अनंत चतुष्टयवंत अरहंत परमात्मा को देखकर हनुमान बहुत आश्चर्य करके प्रसन्न हुए। उन्होंने इस जीवन में पहली बार वीतराग देव को साक्षात् देखा था। जैसे सम्यग्दर्शन के समय पहली बार आत्मदर्शन होने पर भव्य जीव के आत्म-प्रदेश अपूर्व परम आनंद से खिल उठते हैं, वैसे ही हनुमान का हृदय भी प्रभु को देखकर आनंद से खिल उठा।

अहा ! प्रभु की मुद्रा पर कैसी परम शांति और वीतरागता झलक रही है, उसे देख-देखकर हनुमान के रोम-रोम में हर्ष समा गया, वे प्रभु की सर्वज्ञता में झरते हुए अतीन्द्रिय आनंद-रस को श्रद्धा के प्याले में भर-भर कर पीने लगे। परम भक्ति से उनकी हृदय वीणा झंकार उठी –

अत्यन्त आत्मोत्पन्न विषयातीत अनूप अनंत का।
विच्छेदहीन है सुख अहो! शुद्धोपयोग प्रसिद्ध का ॥

अहो, प्रभो ! आप अनुपम अतीन्द्रिय आत्मसुख को शुद्धोपयोग के प्रसाद से अनुभव कर रहे हो। हमारा भी यही मनोरथ है कि हमें भी ऐसा उत्कृष्ट सुख प्राप्त होवे।

– ऐसी प्रसन्नता पूर्वक स्तुति करके हनुमान केवली प्रभु की सभा में बैठे। पाठको, आपको ज्ञातव्य हो कि महाराजा रावण भी इन्हीं केवली प्रभु की सभा में बैठ कर धर्मोपदेश सुन रहे थे।

चारों ओर आनंद फैलाती हुई, प्रभु की दिव्य वाणी खिर रही थी; भव्यजीव प्रसन्नता से झूम रहे थे। जैसे भयंकर गर्मी के बीच मेघ वर्षा होवे और जीवों को शांति हो, वैसे ही संसार के क्लेश से संतप्त जीवों का चित्त दिव्यध्वनि की वर्षा के द्वारा अत्यंत शांत हुआ।

प्रभु की दिव्यध्वनि में आया – "अहो जीवो ! संसार की चारों गतियाँ शुभ-अशुभ भावों के द्वारा दुःखरूप हैं, आत्मा की दशा ही परम सुखरूप है – ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के द्वारा उसकी साधना करो। राग से वे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र – तीनों ही भिन्न हैं और आनंदरूप हैं।"

सभी भव्यजीव एकदम शांत चित्त से सुन रहे हैं, प्रभु कहते हैं कि आत्मा के चैतन्य सुख की अनुभूति के बिना अज्ञानी जीव पुण्य-पाप में मोहित रहते हैं और बाह्य वैभव की तृष्णा की वृद्धि में दुःखी होते हैं। अहो जीवो ! विषयों की लोलुपता छोड़कर अपनी आत्म-शक्ति को जानो। विषयातीत चैतन्य का महान सुख तुम्हारे में ही भरा है।

आत्मा को भूलकर विषयों के आधीन होकर जीव महानिंद्य पापकर्म करके नरकादि गति में महान दुःख भोगता है। अरे, अति दुर्लभ मनुष्य पर्याय प्राप्त करके भी जीव आत्महित नहीं करता और तीव्र हिंसा-झूठ-चोरी आदि पाप करके नरक में चला जाता है। मद्य-माँस-मधु आदि अभक्ष्य का सेवन करनेवाले जीव नरक में जाते हैं और वहाँ उनके शरीर

के भी टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं। ऐसे दुःखों से आत्मा को छुड़ाने के लिए हे जीवो ! तुम आत्मा को समझो, उसकी श्रद्धा करो और शुद्धोपयोगरूप अनुभव करो; शुद्धोपयोगरूप आत्मिक धर्म का फल मोक्ष है।

जीव कितना ही पुण्य करके देवगति में जाता है; परन्तु वहाँ भी अज्ञानता से बाह्य वैभव में ही मूर्छित रहता है और आत्मा के सच्चे सुख को नहीं जानता। अरे, अभी यह दुर्लभ अवसर धर्म करने के लिए मिला है, इसलिए हे जीवो ! अपना हित कर लो ! संसार समुद्र में खोया हुआ मनुष्यभवरूपी रत्न फिर हाथ में आना बहुत दुर्लभ है। इसलिए तत्त्वज्ञान पूर्वक मुनि या श्रावक धर्म का पालन करके आत्मा का हित करो।''

इसप्रकार अनंतवीर्य केवलीप्रभु की दिव्यध्वनि हनुमान एकाग्रचित हो सुन रहे हैं और परम वैराग्यरस में सराबोर हो गये हैं। ऐसा सुन्दर वीतरागी धर्म का उपदेश सुनकर देव, मनुष्य और तिर्यंच सभी आनंदित हो रहे हैं। कितने ही जीव मुनि होते हैं ; कितने ही जीव श्रावक के व्रत धारण करते हैं और कितने ही कल्याणकारी अपूर्व सम्यक्त्व धर्म को प्राप्त होते हैं।

हनुमान, विभीषण आदि ने भी उत्तम भावना से श्रावक व्रत धारण किये। हनुमान को मुनि होने की भावना थी, परन्तु उनका माता-अंजना के प्रति परम स्नेह होने से वे मुनि न हो सके। अरे, संसार का स्नेह-बन्धन ऐसा ही है।

भगवान का उपदेश सुनकर बहुत से जीवों में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र खिल उठा, जैसे बरसात होने पर बगीचे खिल उठते हैं, वैसे ही जिनवाणी की अमृत वर्षा से धर्मात्मा जीवों के आनंद-बगीचे.....श्रावक धर्म तथा मुनि धर्म के पुष्पों से खिल उठे।

इसप्रकार केवलीप्रभु की सभा में आनंद से धर्म श्रवण करके और व्रत-नियम अंगीकार करके सब अपने-अपने स्थान चले गये। हनुमान

की प्रसन्नता का तो पार ही नहीं। आज तो उन्होंने परमात्मा को साक्षात् देखा है, फिर हर्ष की क्या बात कहना ? घर आकर अपने महान हर्ष की बात उन्होंने माता से कही –

"अहो माँ ! आज तो मैंने परमात्मा को साक्षात् देखा है। अहा, कैसा अद्भुत उनका रूप ! कैसी उनकी परमशांत मुद्रा ! और कितना अच्छा उनका उपदेश ! माँ, आज तो मेरा जीवन धन्य हो गया।"

तब माता अंजना कहती है – "वाह बेटा ! अरहंतदेव के साक्षात् दर्शन हुए, तब तो तेरे धन्य भाग हैं और उनके स्वरूप को जो समझे, उसको तो भेद-ज्ञान हो जाता है।"

हनुमान कहते हैं – "वाह माता ! तुम्हारी बात सत्य है। अरहंत परमात्मा तो सर्वज्ञ हैं, वीतराग हैं, उनके द्रव्य में, गुण में, पर्याय में सर्वत्र चैतन्यभाव ही है। राग का अंशमात्र भी उनकी आत्मा में नहीं है, इसलिए उसे समझकर जो अपने आत्मा को राग से भिन्न सर्वज्ञस्वभावी जानते हैं, उन्हें ही सम्यग्दर्शन होता है। भगवान भी ऐसा ही कहते हैं कि –

जो जानते अरहंत को, चैतन्यमय शुद्धभाव से।
वे जानते निजतत्त्व को, समकित लिये आनंद से॥

माता ! मुझे मेरे अनुभवगम्य हुई यह बात श्रीप्रभु की वाणी में सुनते ही महान प्रसन्नता हुई है।

माता अंजना भी पुत्र की प्रसन्नता को देखकर आनंदित हुई, और कहा – "वाह बेटा ! भगवान के प्रति तुम्हारा ऐसा प्रेम देखकर मुझे खुशी हुई है। भगवान की वाणी में तुमने और क्या सुना ? उसे तो बताओ ?"

हनुमान ने अत्यंत उल्लासपूर्वक कहा – "अहो, माता ! भगवान की वाणी में आत्मा के अद्भुत आनंद का स्वरूप एवं वीतराग रस से भरे हुए चैतन्य तत्त्व की गंभीर महिमा सुनकर भव्यजीव शांत रस की नदी में सराबोर हो जाते थे। माता वहाँ कितने ही मुनिराज विद्यमान थे।

वे आत्मा के आनंद में झूल रहे थे। अहो ! आनंद में झूलते हुए मुनिवरों को देखकर मुझे उनके साथ रहने का मन हुआ, परन्तु ....'' (इतना कहकर हनुमान रुक गये।)

अंजना ने पूछा – बेटा हनुमान ! तुम बोलते-बोलते रुक क्यों गये। क्या बताऊँ ? माँ ! मुझे जिनदीक्षा की उत्तम भावना जागी , परन्तु हे माता ! तुम्हारे स्नेह के बंधन को मैं तोड़ न सका । तुम्हारे प्रति परम प्रेम के कारण मैं मुनि न हो सका। माता, सारे संसार के मोह को तो छोड़ने में मैं समर्थ हूँ , परन्तु एक तुम्हारे प्रति मोह नहीं छूटता, इसलिए महाव्रत को न लेकर मैंने मात्र अणुव्रत अंगीकार किया है ।

अंजना ने प्रसन्नता से कहा – अरे पुत्र ! तू अणुव्रतधारी श्रावक हुआ, यह भी महान आनंद की बात है । तुम्हारी उत्तम भावनाओं को देखकर मुझे प्रसन्नता हो रही है । मैं ऐसे महान धर्मात्मा और चरम-शरीरी मोक्षगामी पुत्र की माता हूँ, इसका मुझे गौरव है । अरे, वन में जन्मा मेरा पुत्र बाद में वनवासी होगा ही और आत्मा की परमात्मादशा को साधेगा। धन्य वह पुत्र !.... धन्य वह माता !! स्वानुभूति ही चेतन की माता !!!

कोई दरिद्री जीव स्वप्न में अपने को राजा मानता था, परन्तु नींद खुली तब उसे पता चला कि वह राजा नहीं है। उसीप्रकार मोहनिद्रा में सोता हुआ जीव बाह्य संयोगों में, विषयों में, राग में ही सुख मानता है, वह तो स्वप्न के सुख जैसा मिथ्या है। जब भेदविज्ञान करके जागा, तब आभास हुआ कि अरे ! बाह्य में, राग में कहीं भी मुझे सुख नहीं, उसमें सुख माने वह तो भ्रम है, तभी एक क्षण में वह भ्रम दूर हुआ और भान हुआ कि सच्चा सुख मेरी आत्मा में है, अनन्त ज्ञानी वही कहते हैं कि –

करोड़ वर्ष का स्वप्न भी, जागृत दशा में शान्त।
वैसे अनादि का विभाव भी, ज्ञान होते ही शान्त॥

देशभूषण-कुलभूषण

देशभूषण और कुलभूषण कुछ भव पूर्व उदित और मुदित नाम के सगे भाई थे। उनकी माता का नाम उपभोगा था, वह दुराचारिणी थी, वसु नाम के दुष्ट पुरुष के साथ प्रेम करती थी। मोहवश उस दुष्ट वसु ने उसके पति को मार डाला तथा विषयांध माता उपभोगा ने अपने दोनों पुत्रों को भी मारने के लिए वसु से कहा – "ये दोनों पुत्र अपने दुष्ट कर्म को समझ जावें, इसके पूर्व ही तुम इन्हें मार डालो।"

अरे रे, विषयांध संसारी ! विषयों में अंधी हुई माता अपने सगे पुत्रों को भी मारने के लिए तैयार हो गयी; परन्तु उसके इस दुर्विचार को उसकी पुत्री समझ गयी और उसने अपने दोनों भाई उदित-मुदित को बताकर सावधान कर दिया। इससे क्रोधित होकर उन दोनों भाईयों ने वसु को मार डाला और वह मरकर क्रूर भील हुआ।

फिर वे उदित-मुदित दोनों भाई एक मुनिराज के उपदेश से वैराग्य प्राप्त कर मुनि हो गये। वे सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखरजी की यात्रा को जाते समय रास्ता भूल गये और घोर जंगल में भटक गये। वहाँ पूर्व भव का बैरी क्रूर भील उन्हें पहचान गया और मारने को तैयार हो गया।

इस उपसर्ग के प्रसंग को समझकर उदित मुनि ने मुदित मुनि से कहा –

"हे मुनि ! देह भी छूट जाये ऐसे भंयकर उपसर्ग का प्रसंग आया है, परन्तु तुम भय मत करना, क्रोध भी मत करना, क्षमा में स्थिर रहना; पूर्व में हमने जिसे मारा था, वह दुष्ट वसु का जीव, भील होकर इस समय हमें मारने आया है....परन्तु हम तो मुनि हो गये हैं, अपने को शत्रु-मित्र क्या ? इसलिए तुम आत्मा की वीतराग-भावना में ही दृढ़ रहना।

उसके उत्तर में मुदित मुनि कहते हैं – अहो मुनिवर ! हम मोक्ष के उपासक, देह से भिन्न आत्मा का अनुभव करने वाले, हमको भय

कैसा? देहादि मेरे नहीं हैं, मैं तो अतीन्द्रिय चैतन्य हूँ, मेरी अतीन्द्रिय शांति को हरनेवाला कोई है ही नहीं।''

– ऐसा कहकर वे दोनों मुनि अपनी आत्म-शांति में एकाग्र हो गये। तब परम धैर्यपूर्वक दोनों मुनि देह के ममत्व को छोड़, परम वैराग्य से आत्मभाव में रम गये। भील उन्हें मारने के लिए शस्त्र उठाने लगा, ठीक उसी समय वन का राजा वहाँ पहुँचा और उसने भील को भगाकर दोनों मुनिराजों की रक्षा की।

वन का राजा पूर्वभव में एक पक्षी था,उसे शिकारी के जाल से इन दोनों भाइयों ने बचाया था, उस उपकारी संस्कार के कारण उसे सद्‌बुद्धि उपजी और उसने मुनियों का उपसर्ग दूर कर उनकी रक्षा की। उपसर्ग दूर होते ही दोनों मुनिराज श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा करके रत्नत्रय की आराधना पूर्वक, समाधि-मरण पूर्वक स्वर्ग गये।

दुष्ट भील का जीव दुर्गति में गया और उसने घोर दुःख प्राप्त किया। उसके बाद कुतप के प्रभाव से ज्योतिषी देव हुआ।

अब वे उदित और मुदित (देशभूषण और कुलभूषण) दोनों भाइयों के जीव स्वर्ग की आयु पूर्ण कर एक राजा के यहाँ रत्नरथ और विचित्ररथ नाम के कुमार हुए। भील का जीव भी ज्योतिषी देव की आयु पूर्ण कर इन दोनों का भाई हुआ। देखो, कर्म की विचित्रता ! किसको कहें बैरी, किसको कहें भाई !

इस समय भी पूर्व के बैर संस्कार से वह उन दोनों भाइयों के प्रति बैर रखने लगा। इससे दोनों भाइयों ने उसे देश निकाला दे दिया। वह दंभी-तापस हुआ और विषयांध होकर मरा। अनेक भवों में रुलते-रुलते फिर ज्योतिषी देव हुआ। उसका नाम अग्निप्रभ था।

इधर रत्नरथ और विचित्ररथ – ये दोनों भाई वैराग्य धारण कर राजपाट छोड़कर मुनि हुये....और समाधि-मरण पूर्वक स्वर्ग गये।

वहाँ से निकलकर वे दोनों भाई सिद्धार्थ नगरी के राजा के यहाँ देशभूषण और कुलभूषण नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। अपनी बहिन को देखकर अनजाने में दोनों भाई उसके रूप पर मोहित हो गये, उससे विवाह करने के लिए आपस में लड़ने लगे और एक-दूसरे को मारने के लिए तैयार हो गये। परन्तु जब पता चला कि अरे ! जिसके लिए हम आपस में लड़ रहे थे, वह तो हमारी बहिन है ! – ऐसा पता चलते ही दोनों भाई अत्यन्त शर्मिन्दा हुये और संसार से उदास होकर नगर छोड़कर वन में चले गये और जिनदीक्षा लेकर मुनि हुए।

जिस समय वे आत्मध्यान में लीन थे, तब भी पूर्वभव का बैरी अग्निप्रभदेव उनके ऊपर उपसर्ग करने आया। तब राम-लक्ष्मण ने उसे भगाकर उपसर्ग दूर किया, उपसर्ग दूर होते ही दोनों मुनियों को केवलज्ञान हुआ, वे दोनों केवली भगवन्त विहार करते-करते अयोध्या नगरी में पधारे। तभी भरत तथा त्रिलोकमण्डन हाथी के जीव को प्रतिबोध हुआ....।

अन्त में वे दोनों देशभूषण-कुलभूषण केवली देह की स्थिति पूर्ण होने पर कुंथलगिरि से मोक्ष पधारे।

उन देशभूषण-कुलभूषण केवली भगवन्तों को हमारा नमस्कार हो।

जन्म-मरण मेरे में नहीं होता, देह के मरण से मेरा मरण नहीं होता, मैं तो सदा जीवन्त चैतन्यमय हूँ। मैं मनुष्य या तिर्यंच नहीं हुआ। मैं तो शरीर से भिन्न चैतन्य ही हूँ।

यदि मैं शरीर से भिन्न न होता तो शरीर छूटते ही मैं भी समाप्त हो जाता ?

मैं तो जाननहार स्वरूप से सदा जीवन्त हूँ।